लघुवन पदार्थ
एवं
औषधीय जड़ी-बूटियाँ

कीर्ति बिक्रम
शोध अन्वेषक

प्रकाशक
डॉ. रामदयाल मुण्डा जनजातीय कल्याण शोध संस्थान
मोराबादी, राँची
अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति, अल्पसंख्यक एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग
झारखण्ड सरकार

लघुवन पदार्थ एवं औषधीय जड़ी-बूटियाँ

सम्पादक –

रणेन्द्र कुमार

निदेशक, डॉ. रामदयाल मुण्डा जनजातीय कल्याण शोध संस्थान, राँची

प्रकाशक

डॉ. रामदयाल मुण्डा जनजातीय कल्याण शोध संस्थान

रांची – 834008

प्रथम संस्करण, जनवरी, 2002 ई.

पुनर्मुद्रण – 2020

© डॉ. रामदयाल मुण्डा जनजातीय कल्याण शोध संस्थान, रांची।

आवरण पृष्ठ : विकास अग्रवाल, कलाकोष, रातू रोड, राँची

मूल्य : एक सौ रुपये मात्र

मुद्रक : कैलाश पेपर कन्वर्शन (प्रा.) लिमिटेड, राँची।

भूमिका

झारखण्ड राज्य प्राकृतिक संसाधनों में बहुत धनी है। इनमें खनिज सम्पदा और वन सम्पदा प्रमुख है, किन्तु वन सम्पदा विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि वन एवं वन उत्पाद यहाँ के जनवर्ग, विशेषकर जनजातीय समूहों, के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं चिकित्सकीय पक्षों को गहरे रूप से प्रभावित और नियंत्रित करते हैं। यही वन और वन पदार्थ इस पुस्तक का मुख्य विषय हैं।

सम्पूर्ण वन–उत्पादों को दो भागों में बाँटा जाता है :– (क) काष्ठ उत्पाद और (ख) अकाष्ट उत्पाद। अकाष्ट उत्पाद के दो उप–विभाजन किये जा सकते है :– मुख्य या प्रधान और लघु या गौण।

वन में उपलब्ध होने वाली लकड़ी को छोड़ कर सभी वन पदार्थों को 'लघु वन पदार्थ' की श्रेणी में रखा गया है। लकड़ी मुख्य वनोपज है। शेष वन उत्पाद लघु या गौण वनोपज हैं, किन्तु लघु वन पदार्थों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। सामान्य आदमी के लिए, विशेषकर जनजातियों के लिए, लघु वन पदार्थ अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं और उनका जीवन उसी पर निर्भर करता है।

लघु वन पदार्थ के अन्तर्गत विविध घास, पत्तियाँ, छाल, फूल–फल, कंद–मूल, जड़–बीज, गोंद, शहद, जड़ी–बूटियाँ आदि सभी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त वन में उत्पन्न होने वाली अन्य वस्तुएँ, जैसे– तसर कोकून, लाह आदि तथा वन में पायी जाने वाली चीजें, जैसे– पत्थर, जानवरों के चमड़ें, सींग, दाँत, हड्डियाँ व पक्षियों के पंख आदि भी लघुवन पदार्थ ही माने जाते हैं।

जड़ी–बूटियाँ भी लघु वन पदार्थ की श्रेणी में आती है किन्तु कुछ जड़ी–बूटियों का चमत्कारिक औषधीय गुण होता है और वे विभिन्न प्रयोग में लाई जाती हैं। जनजातीय जीवन में औषधीय जड़ी–बूटियों का अत्यधिक महत्त्व है। जड़ी–बूटियों से उपचार की एक अपनी पद्धति विकसित हो गयी है जिसे 'जनजातीय औषधि' या 'होड़ो पैथी' की संज्ञा दी गयी है। जड़ी–बूटियों के इसी महत्त्व को ध्यान में रखकर उनका विशद् विवरण दिया जाना उचित और आवश्यक है। अस्तु, इस पुस्तक को दो खण्डों में बाँट दिया गया है।

प्रथम खण्ड में 'वन और वन पदार्थ' की चर्चा छः छोटे–छोटे अध्यायों में की गई है प्रथम अध्याय में वन और वन्य पदार्थ, दूसरे में लघु वन पदार्थ, तीसरे में इनका महत्त्व, चौथे में संग्रहण एवं विपणन, पाँचवें में उनका विवरण–वितरण तथा छठे अध्याय में निष्कर्ष दिया गया है। खण्ड दो में वनस्पतीय या जनजातीय औषधियों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमें चार अध्याय हैं जो ७ से १० तक हैं। सातवें अध्याय में औषधीय जड़ी–बूटियों का, आठवें में उनके दोहन, संक्षरण एवं भंडारण का, नौवें अध्याय में उनके गुणों का वर्णन–विश्लेषण है। अंतिम दसवें अध्याय में निष्कर्ष और सुझाव प्रस्तुत किए गये हैं। अंत में परिशिष्ट में औषधीय पौधों और वैद्यों की सूची दी गई है। विशेष अध्ययन या परीक्षण के लिए एक संदर्भ–सूची भी संलग्न है।

इस पुस्तक का उद्देश्य जनजातीय जीवन में वन, वन पदार्थ एवं जड़ी–बूटियों के द्वारा उपचार के महत्त्व से परिचय कराना है। झारखण्ड में जनजातियों की बहुलता है और उनकी भौगोलिक एवं आर्थिक स्थिति कुछ ऐसी रही है कि उनका वनों से लगाव उनके जीवन का अंग बन चुका है। इन्हीं जनजातियों ने वनौषधियों के ज्ञान को मौखिक परम्परा द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी जीवित रखा है। उनके ज्ञान के वैज्ञानिक परीक्षण की बात उठती है। ठीक है, वैज्ञानिक परीक्षण से इसकी प्रामाणिकता बढ़ सकती है, सिद्ध हो सकती है, किन्तु ऐसी भी संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जड़ी–बूटियों में निहित अज्ञात तत्व रोगी को लाभ पहुँचा दें, पर रासायनिक विश्लेषण की पकड़ में न आएं। पुस्तक में औषधीय पौधों का संक्षेप वर्णन है। उनके गुणों की सूचना ग्रामीणों और अनुभवी वैद्यों के अनुभव पर आधारित है। झारखण्ड में वनौषधियों का भण्डार है, यदि उनका विकास सही ढंग से हो तो सर्व–साधारण को सुलभ–सस्ते उपचार उपलब्ध हो सकते हैं, साथ ही जड़ी–बूटियों के व्यापार से अच्छी कमाई की जा सकती है और निर्यात से विदेशी मुद्रा का अर्जन भी हो सकता है। विश्व में इस समय जड़ी–बूटियों का व्यापार दो लाख चौंसठ हजार करोड़ रुपये का है तथा इसके निर्यात से चीन प्रतिवर्ष बाईस हजार पाँच सौ करोड़ रुपये अर्जित करता है।

इस पुस्तक का लेखन क्षेत्रीय अध्ययन पर आधारित है। इसके लिए झारखण्ड के पाँच जिलों – राँची, गुमला, पश्चिम सिंहभूम, पलामू एवं गोड्डा के सात प्रखण्डों में उद्देश्यपूर्ण निर्देशन द्वारा सर्तकता पूर्वक २८ गाँवों का चयन

किया गया है। इस अध्ययन में प्रयुक्त शोध–विधियों में अवलोकन, अनुसूची एवं साक्षात्कार प्रमुख हैं।

झारखण्ड जनजातीय कल्याण शोध–संस्थान के निदेशक डा. प्रकाश चन्द्र उराँव के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनके प्रेरणा और सहयोग से यह सम्भव हो सका है।

इस कार्य को सम्पन्न करने में अनेक व्यक्तियों के सहयोग एवं सहायता मिले हैं, मैं उन सबके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

अंत में, पांडुलिपि में आवश्यक सुधार एवं परिष्कार के लिए डा. बिमला चरण शर्मा, के प्रति नतमस्तक हूँ। उनके लिए आभार ज्ञापन करने में मुझे संकोच हो रहा है; क्योंकि वे मेरे पूज्य पिता हैं और 'पितृ देवो भवः.....!'

मोराबादी, राँची **कीर्ति बिक्रम**

प्राक्कथन

जीव–जगत की तरह वनस्पति–जगत हमारी प्रकृति माँ के अभिन्न अंग हैं। सच कहें तो प्रकृति का नाम लेते ही आँखों के सामने पेड़ पौधे, लतायें और झाड़ियाँ ही सामने आती है। शास्त्रों में कहा गया है वनस्पति–जगत का कोई भी पौधा ऐसा नहीं है जिसका कोई औषधीय महत्त्व नहीं हो। यह हमारी अज्ञानता है कि हम उसके विशिष्ट गुणों से परिचित नहीं होते। वनस्पति–जगत के ये रहस्यमय गुण मानव–जाति को प्राचीन काल से आकर्षित करते रहे हैं। यूनान के इतिहास की पुस्तकें बताती हैं कि ईसा पूर्व के युनानी विद्वानों ने तीन सौ से ज्यादा वनस्पतियों के औषधीय गुणों की खोज की थी। उन्हें सूचीबद्ध किया था। लेकिन वनस्पति–जगत की अनन्त विविधता के कारण मानवीय जिज्ञासा की निरंतरता भी बनी हुई है। ईसा पूर्व से अब तक उन वनस्पतियों की औषधीय गुण की तलाश खत्म नहीं हुई है। इस कड़ी में इस संस्थान के शोध अन्वेषक, श्री कीर्ति बिक्रम जी की यह पुस्तक प्रस्तुत है। इस पुस्तक में विशेष रूप से झारखण्ड में पायी जाने वाली वनस्पतियों के औषधीय गुणों से हमारा परिचय कराया गया है। ऐसी पुस्तकों की उपादेयता निरंतर बढ़ने वाली है, इस तथ्य से हम सभी सुपरिचित हैं।

अत्यंत परिश्रम से सृजित इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के लेखन के लिए अपने शोध अन्वेषक, श्री कीर्ति बिक्रम जी को अशेष बधाइयाँ अर्पित करता हूँ।

चिंटू दोराईबुरू (झा.प्र.से.)
उप-निदेशक

रणेन्द्र कुमार (भा.प्र.से.)
निदेशक

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ संख्या
खण्ड - एक			
अध्याय	1.	वन और वन पदार्थ	1
	2.	लघु वन पदार्थ	6
	3.	लघु वन पदार्थों का महत्त्व	8
	4.	लघु वन पदार्थों का संग्रहण एवं विपणन	11
	5.	लघु वन पदार्थों का विवरण–वितरण	16
	6.	निष्कर्ष	27
खण्ड - दो			
	7.	औषधीय जड़ी–बूटियाँ	33
	8.	औषधीय पौधों का दोहन, संरक्षण एवं भंडारण	40
	9.	औषधीय पौधों का विवरण	44
	10.	निष्कर्ष एवं सुझाव	130
परिशिष्ट			
	(क)	औषधीय पौधे	132
	(ख)	वैद्यों की सूची	134
	संदर्भ–सूची		136

खण्ड - एक

अध्याय - एक

वन और वन पदार्थ

'झारखण्ड' नाम ही इंगित करता है कि यह प्रदेश घने जंगलों का भू–भाग रहा है। यहाँ १६,४०,३६० हेक्टेयर में वन क्षेत्र है जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का २७.६६ प्रतिशत है। ७३,६१४ हे. भूमि पेड़–पौधे व बाग–बगीचे से घिरी है। लगभग १२. ७ लाख हेक्टेयर भूमि परती पड़ी है या झाड़–झंखाड़ क्षेत्र है जिसे वन क्षेत्र में विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार झारखण्ड में संभावित कुल वन क्षेत्र लगभग ३३ लाख हेक्टेयर तक पहुँच सकता है जो कुल क्षेत्र का ४६.८३ प्रतिशत हो सकता है।

झारखण्ड की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, ताप, वर्षा, मिट्टी, धरातल की रचना, आर्द्रता आदि इस प्रकार की है कि वनों का काफी विकास हुआ है। वनों को यदि निर्दयतापूर्वक न काटा जाय, तो झारखण्ड का सम्पूर्ण क्षेत्र वनों से ढंक जा सकता है। यहाँ का सारंडा वन एशिया का सबसे घना जंगल रहा है।

वर्षा की मात्रा के अनुरूप वनस्पतियों की प्रकृति में बदलाव आ जाता है। २०० सें.मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में सदाबहार वन पाये जाते हैं। १०० से २०० से. मी. जहाँ वर्षा होती है, वहाँ मानसूनी वन मिलते हैं। ५० से १०० सें.मी. वाले भूभाग में कटीली झाड़ियों और छोटे–छोटे पौधों वाले जंगल पाये जाते हैं। ५० सें.मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्र में पेड़–वृक्ष उग नहीं पाते, पनप नहीं पाते तथा वहाँ मरुस्थलीय वनस्पति दृष्टिगोचर होती है।

भू–रचना के अनुसार वनों की प्रकृति और मात्रा में अन्तर दीखता है। पहाड़ी भागों में वन अधिक (६५%) और मैदानी भागों में कम (२०–३५%) पाया जाता है। झारखण्ड के विभिन्न जिलों में वनों के वितरण में विषमता पाई जाती है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है :–

तालिका - 1 झारखण्ड में जिलावार वन-वितरण

	जिला	वन क्षेत्र (व.कि.मी.)		जिला	वन क्षेत्र (व.कि.मी.)
१.	पलामू	३,५३१.३३	१०.	धनबाद	२६३.८०
२.	हजारीबाग	२,४२६.०४	११.	देवघर	२३५.४६
३.	गिरिडीह	२,२८६.३०	१२.	कोडरमा	८६.३८
४.	गढ़वा	२,०२८.४०	१३.	साहेबगंज	८२.५४
५.	चतरा	१,६६१.५२	१४.	गोड्डा	—
६.	राँची	१,७६४.५४	१५.	पाकुड़	—
७.	दुमका	१,६०६.८६	१६.	बोकारो	—
८.	गुमला	१,३०८.३५	१७.	प. सिंहभूम	—
६.	लोहरदगा	३६५.७३	१८.	पूर्वी सिंहभूम	४,४६३.११

(* आधार – १६६१ की जनगणना एवं १६६३–६४ की वार्षिक प्रशासन रिपोर्ट)

प्रतिशत के आधार पर सर्वाधिक जंगल क्षेत्र हजारीबाग (४८.३६%) में है। फिर पलामू (४४.६८%), गिरिडीह (३४.०३%), लोहरदगा (२६.०६%), सिंहभूम (२८.०२%), गुमला (२५.५३%), राँची (२०.१५%), साहेबगंज (१२.२६%), दुमका (१०.७५%), गोड्डा (१०.३२%), देवघर (८.६४%) तथा सबसे कम धनबाद में (७.८६%) है।

झारखण्ड के वन मानसूनी हैं। इनका दो वर्गीकरण किया जा सकता है : आर्द्र पतझड़ और शुष्क पतझड़ा आर्द्र पतझड़ मानसूनी वन झारखण्ड के अधिकांश भागों में पाया जाता है। इसके वृक्षों के पत्ते गर्मी ऋतु के प्रारम्भ में झड़ जाते हैं। ऐसे वृक्षों में सखुआ या साल, नीम, महुआ, पीपल, कुसुम, करंज, गंभार, पाकड़, सिरिस, सेमल आदि प्रमुख है। इस वन का सबसे प्रधान पेड़ है सखुआ जो वन क्षेत्र का ६० से ६० प्रतिशत ग्रहण करता है। सखुआ पेड़ मुख्यतः लेटेराइट मिट्टी में अधिक मिलते हैं। सारंडा वन सखुआ–सागवान के लिए प्रसिद्ध है।

शुष्क पतझड़ वन में भी प्रायः आर्द्र पतझड़ वन जैसा ही दृश्य मिलता है, किन्तु इस वन में वृक्ष छोटे होते हैं और जंगल कम घने होते हैं। इन दोनों प्रकार के जंगलों में अन्तर केवल आकार और घनापन का है। फिर भी इस वन में कुछ पेड़ ऐसे होते हैं जो काफी महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे– शीशम, खैर, बांस आदि। बांस का विकास यहाँ फिलाइट क्षेत्र में अधिक हुआ है, आर्द्र पतझड़ वन के पेड़ अधिक ऊँचे और मोटे एवं सघन होते हैं, शुष्क पतझड़ के पेड़ छोटे और कम घने होते हैं।

झारखण्ड के वन–वनस्पतियों में कई किस्मों की मिलावट पाई जाती है। यहाँ कुछ उष्णीय क्षेत्र के सदाबहार वृक्ष भी मिलते हैं, जैसे आम, महुआ, जामुन, बांस आदि। फिर ठंडे क्षेत्र के नुमाइन्दे वृक्ष भी यहाँ पाये जाते हैं, जैसे पाइन, चीड़ आदि। ऐसे वृक्ष नेतरहाट के ऊँचे पत–क्षेत्र में देखे जा सकते हैं।

यहाँ के जंगलों में दो सौ से अधिक किस्म की घास खूब पाई जाती है। सवई घास सबसे महत्त्वपूर्ण है और अनेक उपयोगी कामों में इसका प्रयोग होता है।

जंगलों से लकड़ी, जलावन, पत्तियाँ, कंदमूल, छाल, जड़ आदि उपलब्ध होते हैं। जिसका आर्थिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है, राष्ट्रीय आय का २.३ प्रतिशत वन से प्राप्त होता है। ५.५ करोड़ पशुओं को चराने की सुविधा प्राप्त है। लाखों लोगों की जीविका वन से चलती है। लगभग २.५ करोड़ जनजातियों का निवास स्थल है। वनों से ५०० करोड़ रुपये की लघु या गौण उपजें प्राप्त होती हैं।

प्रशासनिक दृष्टि से वनों का तीन वर्गीकरण किया गया है :–

१. सुरक्षित वन ५१ प्रतिशत

२. रक्षित वन २६ प्रतिशत

३. अवर्गीकृत वन २० प्रतिशत

स्वतंत्रता के बाद अब वनों की निम्न श्रेणियाँ स्वीकृत की गई हैं :–

(क) राजकीय वन

(ख) सामुदायिक वन

(ग) निजी वन

वनों के वर्गीकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि वनों के स्वामित्व के साथ ही इनका दोहन, संरक्षण एवं विनाश किस प्रकार होता है या होता होगा। सरकारी वनों में कुछेक विशेष उत्पादों पर प्रशासनिक नियंत्रण है, किन्तु लघु वन पदार्थों के संग्रहण एवं उपयोग के लिए जनजातियों को छूट दी गई है, इसके अलावे चोरी–चुपके भी वनों का दोहन खूब होता है।

झारखण्ड में जनजातियों की बहुलता है और वनभूमि भी अधिक है, जनजातीय जीवन में वन एवं वन उत्पादों का अत्यधिक महत्त्व है। यह उनकी अमूल्य धरोहर है। उनकी आर्थिक व्यवस्था और संस्कृति का अभिन्न अंग है। वन उत्पादों का ये मुख्यतः चार प्रकार से प्रयोग करते है :–

१. खाद्य पदार्थ के रूप में

२. घरेलू उपस्कर, कृषि यंत्र या गृह निर्माण के लिए

३. विक्रय द्वारा कुछ आय के स्रोत के रूप में (व्यापारिक महत्त्व)

४. औषधीय प्रयोग के रूप में

वनों से उपलब्ध होने वाले फूल–फल, कन्द–मूल, साग–पात आदि खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। लकड़ियों का प्रयोग गृह–निर्माण, घरेलू सामान जैसे– खटिया, मचिया, बेंच, दरवाजा, खिड़की, ओखल आदि तथा कृषि यंत्र जैसे– हल, कुदाल का बेंट, ठेकी, जुआढ आदि बनाने के लिए होता है। बांस का उपयोग छप्पर छाने तथा टोकरी, ओडिया, चटाई आदि बनाने में होता है। कुमनी, बंसी, तीर–धनुष भी इससे बनाये जाते हैं। सवई घास से रस्सी–चटाई बनायी जाती है और छप्पर भी छाया जाता है। जामुन की लकड़ी से जमोट बनता है जो पानी में सड़ता–गलता नहीं। नीम, करंज आदि से दतवन और तेल प्राप्त होता है, सेमल की रूई का विभिन्न घरेलू प्रयोग है। सखुआ और महुलान की पत्तियों से दोना–पत्तल, झोपड़ी–मचान, छाता–घोघा आदि बनाये जाते हैं। खैर से कत्था प्राप्त किया जाता है। व्यापारिक महत्त्व का सबसे प्रमुख वन–उत्पाद लाह, तसर कोकून, केन्दू पत्ता आदि है। विश्व के लाह उत्पाद का ८० प्रतिशत भारत में होता है और उसका ७० प्रतिशत झारखण्ड में होता है। यह झारखण्ड का काला सोना है।

जनजातीय क्षेत्र में जहाँ आधुनिक चिकित्सा सेवा–सुविधा का अभाव है, रोगों के उपचार के लिए परंपरागत ढंग और जड़ी–बूटियों का प्रयोग किया जाता है। जड़ी–बूटियों को हाट–बाजार में बेच कर कुछ कमाई भी हो जाती है।

इस प्रकार वन और वन पदार्थ झारखण्डे, विशेषकर जनजातीय जीवन, का केन्द्र बिन्दु है, सामाजिक धुरी और आर्थिक रीढ़ है। साथ ही वन यहाँ की सांस्कृतिक विरासत है और धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ा है। पर्व–त्योहार वन से जुड़े हैं। जंगल है तो मंगल है। जंगल ही में इनके देवी–देवता भी रहते हैं जो पेड़ों की फुनगियों से, झुरमुट से, धड़ और जड़ से इन्हें सुखी एवं दीर्घायु होने का आशीर्वाद देते हैं।

अध्याय - दो

लघु वन पदार्थ

जंगल से प्राप्त लकड़ी को सबसे बड़ा उत्पाद और अन्य को गौण या लघु उत्पाद माना जाता है। संपूर्ण वन उत्पादों को दो भागों में बांटा जाता है :

(क) काष्ट (वुड) उत्पाद

(ख) अकाष्ट (नन वुड) उत्पाद

एक दूसरे प्रकार से वन–उत्पादों को दो श्रेणियों में रखा जाता है :–

(१) मुख्य (मेजर) उत्पाद

(२) लघु या गौण (माइनर) उत्पाद

वन में उपलब्ध होने वाली लकड़ी (टिम्बर) को छोड़ कर सभी वन पदार्थों को लघु वन पदार्थों की श्रेणी में रखा गया है। लकड़ी को मुख्य वनोपज माना जाता है। शेष वन उत्पाद लघु या गौण वनोपज हैं, जो सच पूछिए तो, न लघु हैं, न गौण, क्योंकि उनकी भूमिका वनों में बसने वाले या वनों के आस–पास रहने वाले जनसमुदाय के जीवन में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। पहले लकड़ी का बड़ा महत्त्व था। इसीलिए लकड़ी व बांस को भी मुख्य वनोपज मान लिया गया, किन्तु अब तो लघु वन पदार्थों का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। ये लघु उत्पाद आम आदमी के लिए, विशेष कर जनजातियों के लिए मुख्य और बड़ा उत्पाद हैं। उसी पर उनका जीवन निर्भर करता है।

लघु वन पदार्थ के अंतर्गत मुख्यतः घास, पत्तियाँ, छाल, फूल–फल, कंद–मूल, जड़–टयूबर, बीज, गोंद, शहद, औषधोपयोगी जड़ी–बूटियों आदि शामिल हैं। इनके अतिरिक्त वन में पैदा की जाने वाली वस्तुएँ, जैसे– तसर, कोकून, लाह आदि तथा जंगलों में पायी जाने वाली चीजें, जैसे– पत्थर, जानवरों के चमड़े, सींग, दाँत, हड्डियाँ व पक्षियों के पंख आदि भी लघु वन पदार्थ ही माने जाते हैं। कुछ वन उत्पाद सीधे ही या कुछ परिशोधित कर उपयोग में लाए जाते हैं। कुछ वनोपज का विक्रय और कुछ का विनिमय होता है।

राष्ट्रीय कृषि कमीशन ने लघु वन पदार्थों को दस भागों में विभक्त किया है :–

१. रेशा (फाइबर)

२. कच्चा रेशम (फलोसेज)

३. तेल बीज

४. रंग–रोगन (टैन एंड डाइज)

५. गोंद

६. औषधीय जड़ी–बूटियाँ (औषधि, मसाले, विष एवं कीटनाशी)

७. पत्तियाँ

८. खाद्योपज – फूल–फल, कंद–मूल, साग–पात, शहद

९. लाह एवं उसके उत्पाद

१०. अन्य

यह वर्गीकरण पौधों एवं पदार्थों की प्रकृति एवं उनकी उपादेयता पर आधारित प्रतीत होता है। सामूहिक रूप से वन पदार्थ जनजातीय जीवन में विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इनमें से कुछ वनोपज पर पूर्ण सरकारी अधिकार है और कुछ का सरकारी नियंत्रण रखा गया है, जिसका राष्ट्रीयकरण हो गया है। शेष लघु वन पदार्थों तक ग्रामीण जनजातियों की वैध पहुँच है जिसके सहारे इनके आर्थिक जीवन में बड़ी राहत मिलती है।

कुछ लघु वन पदार्थ ऐसे हैं कि जिनकी कीमत और उपयोगिता परिशोधन एवं परिष्करण के बाद बहुत अधिक हो जा सकती है और उसकी जानकारी के बारे में जनजातियों को अधिक लाभ मिल सकता है। वन–उत्पाद तो महत्त्वपूर्ण हैं ही; उनका प्रबंधन (मैनेजमेंट) और उन्नयन और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। तभी जनजातियों को विशेष लाभ पहुँचा कर उनके जीवन में खुशहाली लाई जा सकती है।

अध्याय - तीन

लघु वन पदार्थों का महत्त्व

भारतीय जीवन, खासकर ग्राम्य–जीवन में वन एवं वन पदार्थों का बहुत महत्त्व शुरू से ही रहा है। मानव सभ्यता का विकास वनों की गोद में हुआ है। प्राचीन काल में ऋषियों–मुनियों ने वन के सौम्य–शांत वातावरण में ही चिंतन–मनन किया। हमारी प्राचीन संस्कृति जो उच्च–कोटि की मानी गई है, अरण्य–संस्कृति रही है। वनों में ही हमारे ऋषि–मुनियों के गुरुकुल चलते थे जो शिक्षण–प्रशिक्षण के केन्द्र थे। यहीं से सामाजिक–राजनीतिक सूत्रों का निर्देशन होता था और आर्थिक जीवन में भी उत्कर्ष प्राप्त होता था। कृषि के उद्‌भव के पूर्व तो जीवन–जीविका वन पर ही आधारित थे। भोजन का भी मुख्य स्रोत वह ही था – चाहे शाकाहारी हो या मांसाहारी। खाद्य के रूप में फूल–फल, साग–पात, कंदमूल वन में उपलब्ध होते हैं तो आखेट के लिए पशु–पक्षी एवं जीव वन में ही मिलते हैं। सभ्यता के विकास एवं नई प्रविधियों एवं तकनीकों के प्रचलन के कारण आर्थिक स्रोत या जीवकोपार्जन के साधनों में परिवर्तन हुए। फिर भी वनों एवं वन–उत्पादों का महत्त्व सदा की तरह आज भी हैं।

वन–उत्पादों का महत्त्व जनजातीय जीवन में तो और अधिक है। यह केवल संयोग ही नहीं है कि अधिकांश जनजातियाँ पहाड़ी जंगली इलाकों में निवास करती है, बल्कि इसके पीछे सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारकों का लम्बा इतिहास है। अतः जनजातियों का वनों के साथ प्राचीन एवं गहरा संबंध है। जंगल में ही मंगल है। जंगल के बिना जनजातीय जीवन अर्थहीन लगता है। वन पर ही उनका अस्तित्व है। इनके जीवन में वृक्ष केवल एक वृक्ष नहीं है, बल्कि यह आत्मविश्वास है जो सामाजिक सामूहिकता को जीवंत बना देता है। मत्स्य–पुराण में एक वृक्ष को दस पुत्रों के समान बताया गया है। वाराह–पुराण में भी वृक्ष की महत्ता बतायी गई है। वृक्ष पूजा का प्रचलन हमारी संस्कृति का अंग रहा है। जनजातीय जीवन में भी वृक्ष पूजा, वन–पूजा या प्रकृति पूजा विशेष महत्त्व रखती हैं। ऐसा कहा जाता है कि एक वृक्ष से ५० वर्ष के औसत जीवन काल में विभिन्न रूपों

में १५.५ लाख रुपये मूल्य के बराबर लाभ मिलता है। आक्सीजन के रूप में २.५ लाख, जल–नमी नियंत्रित करने के रूप में ३ लाख, भू–क्षरण रोकने एवं भूमि की उर्वरता बनाये रखने के रूप में २.५ लाख, वायु–प्रदूषण के तत्वों को आत्मसात् कर इसे ताजा बनाये रखने में ५ लाख तथा पशु–पक्षियों को आश्रय दाता व अन्नदाता के रूप में २.५ लाख रुपये के बराबर वृक्ष का योगदान होता है। वन एक विलक्षण जीव–निकाय है जिसके अनेक प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष लाभ हैं। अतएव मानव जीवन, विशेषकर जनजातीय जीवन में वनों एवं वन उत्पादों का अत्यधिक महत्त्व है।

झारखण्ड में बत्तीस (32) जनजातियाँ निवास करती हैं जो प्रायः पहाड़ी–जंगली क्षेत्रों में या उसके आस–पास रहती हैं। वन–वनोपज उनके आर्थिक आधार हैं। आदिम जनजातियों, जैसे– असुर, बिरहोर, बिरजिया, कोरबा, माल पहाड़िया, सौरिया पहाड़िया, सवर, परहिया तथा पहाड़ी खड़िया का आर्थिक जीवन मुख्यतः वन उत्पादन के दोहन पर आश्रित रहा है। वन जनजातियों के सांस्कृतिक परिवेश हैं और धार्मिक उपनिवेश हैं। उनके देवी–देवता वनों में ही रहते हैं – वृक्षों पर या वृक्षों के नीचे झुरमुटों में ये निवास करते हैं। इनके पर्व–त्योहार भी वन से जुड़े हैं, जैसे वाहा पर्व सखुआ फूल से, करम पर्व करम डाली से, सरहुल पर्व सरना – सखुआ संकुल से जुड़ा है। इस प्रकार जनजातियों का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन वनों के साथ गहन रूप से जुड़ा हुआ है। कुछ जनजातियाँ आज भी जंगलों को काटकर झूम खेती करती हैं, जैसे– सौरिया पहाड़िया, असुर आदि। कुछेक जनजातियाँ जैसे बिरहोर आदि का सम्पूर्ण आर्थिक जीवन वन दोहन पर ही निर्भर है। ये घुमक्कड़ वन–वन घूमते रहते हैं। वन ही इनका खाना और वन ही इनका बिछौना है। महली, करमाली आदि शिल्पी जातियाँ अपना जीवकोपार्जन बांस–टोकरी, सूप, झाड़ू, रस्सी, चटाई इत्यादि बनाकर–बेचकर करती है और इन वस्तुओं के निर्माण में प्रयुक्त कच्चा माल के लिए वन पर निर्भर हैं।

जनजातीय जीवन में लघु वन पदार्थों का बहुत महत्त्व है। प्रायः समग्र जनजातियाँ लघु वन पदार्थों का उपयोग करती हैं। कुछ लघु वन पदार्थ इनके भोजन का अंश बन जाता है। कई प्रकार के फूल–फल, कंद–मूल, सागपात वन में उपलब्ध हो जाते हैं जिन्हें ये खाते भी हैं और बेचते भी हैं। कुछेक

वन उत्पादों से ये अपने घरेलू उपस्कर – उपादान बनाते हैं। सोने–बैठने के लिए खटिया, मचिया, रस्सी, संग्रहण एवं भंडारण के लिए टोकरी, सूप, मोनी, ओड़िया आदि। आखेट और मछली पकड़ने के लिए तीर–धनुष, टांगी, कुमनी आदि तथा कृषि यंत्र–हल व पट्टा आदि एवं इनके पारंपरिक अस्त्र–शस्त्र आदि के निर्माण के लिए सारे समान वन से सहज ही उपलब्ध होते हैं। पूजा एवं धार्मिक अनुष्ठान के लिए फूल–पत्ती, पंख आदि वन से ही प्राप्त करते हैं। चिकित्सा के लिए औषधीय गुणों से युक्त अनेक जडी–बूटियाँ वन से ही मिलती हैं। हड़िया जनजातियों का केवल लोकप्रिय पेय–वस्तु ही नहीं है, बल्कि इस परंपरागत पेय का सांस्कृतिक और धार्मिक उत्सव है। इसीलिए उत्सव के अवसर, धार्मिक अनुष्ठान के समय और सामाजिक समारोहों के वक्त भी इसका उपयोग किया जाता है। पीने और पिलाने के लिए और बेच कर कुछ कमाने के लिए भी शराब चुलाने के लिए महुआ फूल–फल वन की गोद से ही चुने–बटोरे जाते हैं। कहने को तो कई जनजातियाँ अपना मुख्य पेशा कृषि बतलाती हैं, परन्तु क्षेत्रीय अध्ययनोपरांत और सूक्ष्म निरीक्षण के बाद सत्य सामने आता है कि जंगल ही इनका मुख्य साधन है। वन इनके रग–रग, में नस–नस में बसा है और ये वन के चप्पे–चप्पे में बसे हैं। लघुवन पदार्थों के अनेक और अनगिनत उपयोग के कारण इनके जीवन में इनका महत्त्व सर्वोपरि है। ये लघुवन पदार्थों को घरेलू व निजी उपयोग में लाने के अतिरिक्त इन्हें स्थानीय हाट–बाजारों में बेच कर आर्थिक लाभ उठाते हैं। कोई दस लाख लोग वनोपज के सहारे जीवन बसर करते हैं। इन वन उत्पादों में ही इनकी आशा–आकांक्षा टंगी रहती है और वन भी इनके असीमित संभावनाओं के आश्वासन का संगीत सुनाता रहता है। सचमुच जनजातीय जीवन को खुशहाल रखने की अक्षुण्ण क्षमता वनों में है बशर्ते वनों के निर्मम विनाश को रोका जाय और समुचित संरक्षण हो।

अध्याय - चार

लघु वन पदार्थों का संग्रहण एवं विपणन

प्रायः सभी जनजातियों को लघु वन पदार्थों के संग्रहण व उपयोग का अवसर प्राप्त है। लघु वन उत्पादों के संग्रहण, उपयोग व विक्रय का भी हक सरकार या प्रशासन द्वारा जनजातियों को दिया गया है। इसके लिए उन्हें विशेष छूट–सुविधा उपलब्ध है। लघु वन पदार्थों का संग्रहण मुख्यतः ग्रामीण जनजातियों द्वारा होता है जो वनों में या वनों के आस–पास निवास करते हैं। कुछ वन पदार्थ ये जनजातियाँ स्वतंत्र रूप से स्वेच्छापूर्वक एकत्र करती है फिर उसको निजी उपयोग में लाती हैं या और बाजारों में बेच कर आय करती हैं या विनिमय द्वारा कुछ इच्छित आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करती हैं। कुछेक वन पदार्थ अन्य अभिकर्ताओं द्वारा प्राप्त कर बेचा जाता है। वैसी स्थिति में जनजातीय लोग संग्रहण कार्य मजदूरी के बदले में करते हैं। इससे भी अच्छी आमदनी हो जाती है। इस प्रकार लघु वन पदार्थों का संग्रहण इन्हें विभिन्न वनोपज उपलब्ध कराता है या फिर एक प्रकार का रोजगार, दैनिक रोजगार मुहैय्या कराता है। १९८१ में उन्हें ५० लाख मानव दिवस का रोजगार उपलब्ध कराया गया था तथा २.७५ करोड़ रुपये उन्हें मजदूरी के रूप में दिए गए।

कुछेक वन उत्पाद राष्ट्रीयकृत वनोपज की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि उनके क्रय–विक्रय एवं परिवहन–परिचालन पर सरकारी नियंत्रण है। इनमें मुख्यतः केन्दू पत्ता, साल बीज, हर्रा, गोंद (वर्ग–२) आदि हैं। शेष लघु वन पदार्थों पर सरकारी एकाधिकार नहीं है। ये अराष्ट्रीयकृत हैं और इसके संग्रहण और व्यापार–विपणन पर सरकारी नियंत्रण नहीं है। कोई भी स्वतंत्र रूप से संग्रहण एवं विपणन कर सकता है।

१९७३ में केन्दू पत्ती व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर तथा बिचौलियों को हटा कर जनजातियों को लाभ पहुंचाने का प्रयास किया गया। साल बीज के व्यापार का नियंत्रण भी सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है। इससे प्रतिवर्ष १५ लाख मानव दिवस का रोजगार जनजातियों को उपलब्ध होता है। महुआ,

कुसुम, करंज बीज से तेल निकाल कर उसका उपयोग बराबर होता रहा तथा बीजों को संग्रह कर हाट–बाजार में बेचा भी जाता रहा, किन्तु १६८० में इन वस्तुओं का भी राष्ट्रीयकरण हो गया। महुआ बीज और महुलान, बांस तथा कुछेक अन्य वन पदार्थों पर भी नियंत्रण हो गया है। सवई घास, गोंद – राल, महुआ फूल, इमली, चिरौंजी, केंद फल, जामुन, कोयनार पत्ती, कचनार फूल, करील आदि वन पदार्थों के संग्रहण में जनजातियों को पूरी छूट है।

प्रत्येक जिन्स सभी या हर क्षेत्र या वन में नहीं मिलता या मिलता भी है तो कमोवेश मात्रा में। फिर विभिन्न लघु वन पदार्थ अलग–अलग मौसम में मिलता है। कुछ भले ही सालोभर उपलब्ध हो, किन्तु अधिकांश वन पदार्थ मौसमी होते हैं।

जहाँ वन गांव के समीप होता है, वहां के निवासियों का पूरा परिवार मौसम भर संग्रहण में जुटा रहता है। अपनी दैनिक जरूरतों और उपयोग में आने वाली वस्तुओं के अलावे अन्य वन उपजों का संग्रहण भी किया जाता है ताकि उन्हें बेच कर कुछ धन कमाया जाय।

विभिन्न लघु वन पदार्थों का संग्रहण किस मौसम में होता है उसका विवरण निम्न तालिका में देखा जा सकता है :–

तालिका - 2
मुख्य लघु वन पदार्थ संग्रहण

वन पदार्थ	मौसम
करंज	जनवरी – मार्च
महुआ फूल	फरवरी
केन्दू पत्ती	अप्रैल – मई
चिरौंजी	जून
साल बीज	जून – जुलाई
महुआ बीज	जुलाई – सितम्बर
महुलान चोप	अगस्त – सितम्बर
बांस	सितम्बर – अक्टूबर
आंवला	सितम्बर – नवम्बर
हर्रे–बहेड़ा	दिसम्बर – मार्च

जनजातियों द्वारा संकलित वन–पदार्थ सामान्यतः साप्ताहिक हाट–बाजारों में बेचा जाता है जहाँ फुटकर व्यापारी द्वारा मनमानी दर पर या कम कीमत पर खरीद लिया जाता है। यह सच है कि सीमित जानकारी, वन पदार्थों की अल्प मात्रा, आवागमन की असुविधा आदि के कारण मंडी या बड़े बाजारों में न जाकर हाटों में अपनी चीज बेचते हैं। यह मात्र विवशता नहीं है। किन्तु एक उल्लेखनीय बात यहाँ यह है कि जनजातियों का हाटों से गहरा लगाव रहता है। परंपरागत हाट–बाजारों में माल बेचने से विशेष लाभ तो नहीं होता, फिर भी इस प्रवृति को वे छोड़ नहीं सकते। इनके जीवन के आयाम इन हाटों से जुड़े रहते हैं। हाट–बाजार इनके लिए केवल खरीद–फरोख्त की जगह नहीं हैं, बल्कि एक सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में इसका प्रकार्य है। यहाँ लोग आते हैं, खरीद–बिक्री करते हैं। मित्रों, नातेदारों–रिश्तेदारों से मिलते–जुलते हैं तथा साथ–साथ बैठकर कुछ खाते–पीते हैं, विचार–विमर्श करते हैं। यहाँ तक कि शादी–विवाह की बात भी इन हाटों में तय होती है। जीवनसाथी का चुनाव भी होता है और कभी–कभी विवाह भी सम्पन्न हो जाता है। यहाँ वन–उत्पादों की बिक्री मूल्य लेकर होती है या एक चीज का दूसरी चीज से विनिमय होता है।

जनजातियों द्वारा संकलित वन पदार्थों को हाट में बिचौलिये सस्ते या अनुचित मूल्य पर उन्हें बहला–फुसला कर खरीद लेते हैं जिसके कारण उन्हें उचित अथवा पर्याप्त लाभ नहीं होता। वन–उत्पादों से जनजातियों के आर्थिक जीवन में सुधार लाने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर प्रयास हुए हैं और हो रहे हैं। 'बिहार राज्य आदिवासी सहकारी विकास निगम लि.' द्वारा लघुवन पदार्थों का लाभकारी मूल्य पर संकलन योजना इस दिशा में एक प्रभावी कदम है। इस निगम की स्थापना १९६९ में ही हुई। सम्प्रति निगम के ६ शाखा कार्यालय है – राँची, डालटेनगंज, चाईबासा, हजारीबाग, दुमका और साहेबगंज में। ऐसे निगम का कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण बिहार है पर इसका कार्य मुख्यतः जनजाति बहुल क्षेत्र झारखंड में है। इस निगम के अनेक उद्देश्यों में एक जनजातियों द्वारा संकलित एवं उत्पादित वनोपज एवं कृषि उत्पाद का क्रय–विक्रय करना है ताकि बिचौलियों को धीरे–धीरे हटा दिया जाय। वनोत्पाद एवं अन्य वस्तुओं का परिष्करण और वर्गीकरण या स्तरीकरण के अभाव में वस्तुओं का उचित मूल्य अथवा लाभ नहीं मिल पाता। जनजातियों को लघु वन पदार्थों का लाभप्रद मूल्य एवं उचित मजदूरी दिलाने के उद्देश्य

से समितियों के माध्यम से निगम सीधा व्यापार करता है। जनजातीय क्षेत्र में ४७४ लैम्पस गठित हैं जिनमें २१३ निगम से संबंध हैं। विभिन्न क्षेत्रों में, हाटों में निगम द्वारा अलग–अलग समर्थन मूल्यों की घोषणा होती है। लैम्पस का सृजन १६७४ में हुआ। यह लघु वन एवं कृषि उत्पादित पदार्थों के लिए बिचौलिया का काम करता है तथा भंडारण कार्य भी करता है।

विकास भारती भी एक महत्त्वपूर्ण संस्था है जो जनजातियों के उत्थान कार्य में संलग्न है। सरकारी स्तर पर भी अनेक योजनाएँ चल रही हैं, किन्तु कुप्रबंधन एवं रुचि के अभाव के कारण उतना कारगर सिद्ध नहीं हो रही है। गांव–स्तर पर नहीं तो कम से कम पंचायत स्तर पर कुछ ऐसे कार्यक्रम होने चाहिए जिसके माध्यम से ग्रामीण जनजातियों को वन एवं वन–उत्पादों के महत्त्व की जानकारी दी जा सके तथा वन–उत्पादों से अधिक लाभ उठाने के उपाय बताया जा सके। साथ ही वन–संरक्षण एवं वृक्षारोपण के महत्त्व को रेखांकित एवं कर्णांकित करते हुए इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण, निर्देशन एवं कार्यभार इन पर सौंपने का प्रयास किया जाय।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि लकड़ी (टिम्बर) को छोड़ कर शेष वन–उत्पादों को लघु वन पदार्थ की श्रेणी में रखा गया है। इसके अन्तर्गत अनेक वस्तुएँ आती हैं। झारखंड के जनजातीय बहुल क्षेत्र में पाये जाने वाले प्रमुख लघुवन पदार्थों की सूची नीचे दी जा रही है :–

१. लाह	२. तेन्दू पत्ता	३. सखुआ या साल
४. महुआ.	५. करंज	६. इमली
७. सवई घास	८. बांस	६. सेमल
१०. आम	११. कटहल	१२. जामुन
१३. बेर	१४. केंद	१५. नीम
१६. अर्जुन	१७. आसन	१८. आंवला
१६. हर्रा	२०. बहेड़ा	२१. चिरौंजी, पियार, केंद
२२. महुलान पत्ती	२३. खैर	२४. मधु
२५. तसर–कोकून	२६. साग	२७. कंद–मूल–छाल
२८. पलास	२६. औषधीय जड़ी–बूटियां	३०. अन्य

इन वन–पदार्थों में कुछ का तो व्यापारिक महत्त्व है। कुछ दिनानुदिन के उपयोग से जुड़े होने के कारण जनजातियों के घरेलू जीवन में प्रयुक्त होने के साथ ही लघु स्तर पर हाट–बाजार में बेचे जाते हैं। कुछ औषधीय गुणों से युक्त होने के कारण साधन विहीन गरीब जन–जातियों के रोग–उपचार के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं और बेचे भी जाते हैं। जनजातियाँ इनका निजी प्रयोग भी करती हैं और बेच कर उनसे आय भी करती हैं – 'एक पंथ दो काज'। वनों एवं वन–पदार्थों का सही संरक्षण, संवर्द्धन एवं प्रबंधन जनजातियों के जीवन में एक स्वर्णिम विहान ला सकता है।

अध्याय - पाँच

लघु वन पदार्थों का विवरण-वितरण

लाह

विश्व उत्पाद का ८०% लाह भारत में मिलता है। इसका ७०% झारखण्ड में उपलब्ध होता है। यों तो लाह की खेती थाइलैंड और चीन आदि में भी होती है। किन्तु झारखंड क्षेत्र का लाह सर्वोत्तम किस्म का है। झारखंड के प्रायः सभी जिलों में लाह का उत्पादन होता है, किन्तु मुख्य रूप से लाह–उत्पादन के क्षेत्र हैं – खूँटी, बंदगाँव, अड़की, मारंगहादा, जलडेगा, बुण्डू, तमाड़, रनिया, मरचा, चाईबासा, इचागढ़, नीमडीह, चांडिल, सिल्ली, सोनाहातू, पलामू, चतरा, हंटरगंज, अनगड़ा आदि। इन क्षेत्रों में लाह की सर्वाधिक खेती होती है।

लाह प्रकृति की अद्भुत देन है। लक्का कीड़ा (कैसिफर) लाह उत्पादन अपने शरीर के चारों ओर रक्षा कवच के रूप में करता है। यह गोंद की तरह गाढ़े चिपचिपे द्रव्य के रूप में होता है जो हवा के सम्पर्क से सूख कर कड़ा हो जाता है। ये कीड़े कुछ विशेष प्रकार के वृक्षों पर पनपते हैं, पाले जा सकते हैं। साल में लाह की चार फसलें होती हैं जिन्हें दो वर्गों में रखा जाता है

(क) रंगीनी फसल १. कतकी २. वैसाखी

(ख) कुसुमी फसल ३. अगहनी ४. जेठवी

तालिका-3
लाह फसलें

फसल			फसल कटाई
रंगीनी	कतकी	जून–जूलाई	अक्टूबर–नवम्बर
	वैसाखी	फरवरी–मार्च	अप्रैल–मई
कुसमी	अगहनी	जून–जुलाई	दिसम्बर–जनवरी
	जैठवी	जनवरी–फरवरी	जून–जुलाई

कुसुम पेड़ पर लगाया गया लाह कुसमी और अन्य वृक्षों पर का लाह रंगीनी लाह कहलाता है – जैसे बेर, पलास, अर्जुन, आसन आदि। कुसुम और बेर पेड़ पर के लाह सर्वोत्तम होते हैं और इनका मूल्य भी अधिक होता है। पेड़ से लाहमयी टहनियों को तोड़–काट लिया जाता है। यह "स्टिक लाह" कहलाता है। उसी को कूट–पीस–गला कर चपड़ा लाह, बटन लाह, विरंजीत लाह बनाये जाते हैं। आगामी फसल के लिए बीज रूप में कुछ पेड़ों पर छोड़ भी दिए जाते हैं।

लाह पूरे झारखंड में उत्पादित किया जाता है। विश्व के लाह उत्पादन का ८०% भारत में और भारत के उत्पादन का ७०% लाह झारखंड में पैदा किया जाता है। अड़की प्रखण्ड में लाह उत्पादन बहुत होता है। इस क्षेत्र में लघु वन द्रव्यों में लाह का पहला स्थान है। यहाँ का लाह बहुत उत्तम किस्म का होता है और पूरे भारत में प्रसिद्ध है। यहाँ का लाह देश से बाहर भी जाता है। इस क्षेत्र के लाह के बदौलत ही पार्वती लाह उद्योग के मालिक भारतीय लाह उद्योग संघ के अध्यक्ष बन गए हैं। प्रति बाजार यहाँ से ५००–६०० मन लाह जाता है। लुपुंगहातू के एक वृद्ध सोमरा मुण्डा बताते हैं कि १६६० के आस–पास इस क्षेत्र में ६० हजार टन लाह बिकता था। टोंटो प्रखण्ड में भी लाह की खेती बड़े पैमाने पर होती है। बानों में कुछ कम, किन्तु हाटीगंहोड़े में लाह की अच्छी खेती होती है। लाह से इस क्षेत्र की जनजातियों को विशेष लाभ नहीं हो पाता।

लाह की खेती को उन्नत बनाने तथा व्यापार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वन पदार्थ बनाने की बहुत चेष्टा हो रही है। लाह खेती को उन्नत बनाने के लिए १६२१ में 'इंडियन लैक एसोसिएशन' बना जो १६२५ में नामकुम में 'भारतीय लाह अनुसंधान संस्थान' के रूप में स्थापित हुआ। १६६६ में इस संस्थान को लाह विकास निदेशालय की स्थापना कर 'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्' को सौंप दिया गया। १६८५ में इस परिषद को वन मंत्रालय की स्थापना के बाद हस्तांतरित कर दिया गया। १६८७ जुलाई से 'लाह विकास निदेशालय वन अनुसंधान संस्थान', देहरादून के साथ विलय कर दिया गया।

'लाह विकास निदेशालय' द्वारा लाह के उत्पादन मूल्य, विपणन आंकड़ों का संकलन कार्य के साथ उन्नत विधि प्रदर्शन, बीज वितरण तथा बीज फार्म की देखभाल का कार्य संपादित तो होता ही है, यह केन्द्र और राज्य

सरकार के बीच सम्पर्क स्थापित करता है। यह योजना, विपणन, भंडारण और तकनीकी सलाह देने का कार्य भी करता है। १९९५–९६ में ५ लाह बीज फार्म–सह–प्रदर्शन केन्द्रों की देखभाल इसके जिम्मे रही। ये पाँच केन्द्र पलामू (टुडुहातू), राँची (हेसाडीह), गया (मालीचक), पुरुलिया (चोरीडा) और उडिसा (चाकड़ी) में हैं।

लाह के अनेक उपयोग हैं। लाह से पेंट, चूड़ी, वम, वार्निश, पानी जहाज के इंटरपार्ट की पेंटिग आदि बनाए जाते हैं। लाह के प्रमुख केन्द्र राँची, बुण्डू, खूंटी, मुरहू, तपकारा आदि हैं। लाह खेती की यहाँ संभावना है। इसके लिए प्रोत्साहन दिया जाना और आवयश्यक सहयोग–सहायता जरूरी है।

तेन्दू पत्ता या केंदू पत्ता

इस पत्ते से बीड़ी बनती है। तेंदुपत्ता भी बहुत महत्त्वपूर्ण वन पदार्थ है और पूरे झारखंड में मिलता है। किन्तु तेंदुपत्ता का राष्ट्रीयकरण १९७३ में ही हो गया जिससे विशेष लाभ जनजातियों को सीधे नहीं मिल पाता। तेंदुपत्ता से करोड़ों का राजस्व प्राप्त होता है। १९८१ में ५० लाख मानव दिवस का रोजगार जनजातियों को उपलब्ध कराया गया और उनके बीच ७५ करोड़ रुपये मजदूरी के रूप में वितरित किये गए। केवल विशुनपुर प्रखण्ड में पत्ता–संग्रह कार्य में ६०–७० हजार व्यक्ति लगे हुए हैं। १९७७ में बनारी में निगम की स्थापना हुई। तब से निगम इसमें कार्यरत है। इस क्षेत्र में इसके मुख्य केन्द्र हाडुम, जमरी, चोरकागढ़ा, भखई आदि हैं जहाँ से प्रतिवर्ष १०–२० ट्रक पत्ता लातेहार आदि बीड़ी केन्द्रों में भेजा जाता है। बीड़ी उद्योग सिंहभूम में खूब विकसित है। यहाँ एक लाख बीड़ी मजदूर हैं। प्रतिदिन तीन करोड़ बीड़ी का उत्पादन होता है। इसके मुख्य केन्द्र चक्रधरपुर एवं मनोहरपुर हैं। टोंटो प्रखण्ड में पत्ता–संग्रहण में बहुत सारे जनजातीय परिवार लगे हुए हैं। इसे सुखाकर १५–२० पत्तियों का बीड़ा (गठरी) बनाकर बेचा जाता है। बिचौलिये खरीद कर चक्रधरपुर गोदामों में देते हैं। चक्रधरपुर प्रसिद्ध बीड़ी उद्योग केन्द्र है। यहाँ से बीड़ी बाहर भी भेजी जाती है।

५२ पत्तों का एक बंडल बनता है जिसे पोला कहते हैं। ऐसे १०० बंडल का एक बैग बनता है। केंदू पत्ता की तस्करी बहुत होती है। एजेंट को संग्रह करने में एक बोड़ा (एस. बी.) में १५ रु. कमीशन मिलता है। केंदू के फल का भी संग्रह जनजातियों के द्वारा होता है जिसे खाने के उपयोग में लाते हैं और

बाजारों में बेचते हैं। केंदू पत्ता से दोना–पत्तल भी बनाया जाता है। इससे अच्छी आय जनजातियों को हो जाती है।

सखुआ पत्ता और बीज

सखुआ पेड़ झारखंड के सभी भागों में बहुतायत में पाया जाता है। इसकी पत्ती से दोना–पत्तल और टहनियों से दतुवन बनाकर बेचा जाता है। यह आम जनजातियों की आय का एक स्रोत है। अब तो पत्तों से थाली–कटोरी भी बनने लगे हैं और पत्तों की मांग बढ़ गई है और साथ ही आय भी बढ़ गई है। साल के दतुवन बाजार में खूब बिकते हैं। साल की पत्तियों (६–७) को बांस की बारीक खरिका या कुंभी से जोड़कर पत्तल और दोना बनाया जाता है। इसके फूल का सांस्कृतिक–धार्मिक महत्त्व है।

साल बीज से तेल निकाला जाता है। जिसके कई उपयोग होते हैं। सखुआ बीज का तो इस जनजातीय क्षेत्र में अतुल भंडार है। पर इससे आय इतनी कम होती है कि ग्रामीण चुनना नहीं चाहते। दिनभर लगे रहने पर मुश्किल से २५ रु. मिलते हैं। मुश्किल से क्षेत्र में पाये जाने वाले कुल बीज की एक चौथाई का संग्रह हो पाता है। शेष जंगल में ही गिर कर खत्म हो जाता है। इसका संग्रह करना, फिर सुखाना और पीट–पीट कर बीज निकालना काफी श्रमसाध्य कार्य है। बीज का उपयोग खाने के लिए भी होता है। विशुनपुर प्रखण्ड से हर मौसम में १५०० टन साल बीज बाहर जाता है। बानों प्रखंड से भी कोई हजार क्विंटल बीज बाजारों में बिकता है। एक एजेंट राजेश गुड़िया का कहना है कि इस प्रखंड से १० हजार क्विंटल साल बीज प्राप्त किया जा सकता है। एजेंट को संग्रह के लिए प्रतिटन ६० रुपये मिलते हैं। ५०० टन जमा हो जाने पर वन निगम तेल मिलों में बीज भेजता है। साल बीज से अच्छी कमाई हो जाती है। जनजातियों के लिए साल की पत्तियाँ और दतुवन ही अधिक लाभदायक और महत्त्वपूर्ण है।

महुआ

महुआ महत्त्वपूर्ण लघु वन पदार्थ है। इसका फूल और फल (बीज) दोनों आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, महुआ के पेड़ भी प्रायः झारखंड के सभी भागों में पाये जाते हैं। बानो प्रखंड में महुआ पेड़ बहुत पाये जाते हैं। हर मौसम में २००० क्विंटल महुआ का उत्पादन होता है। हुदां गाँव का महुआ बीज पूरे गुमला जिले

में सबसे अच्छा माना जाता है। हुर्दा बाजार से ५०० क्विंटल, हाटीगंहोड़े बाजार से ५०० क्विंटल और बानो से ३०० क्विंटल सीजन में बाहर भेजा जाता है।

टोंटो प्रखण्ड में भी महुआ फल (डोरी) और फूल का अच्छा संग्रह होता है। प्रत्येक बाजार में ३–४ टन महुआ की बिक्री होती है। पूरे टोंटो प्रखंड में ५० टन महुआ फूल और १०० टन तक डोरी जमा किया जाता है। अड़की प्रखंड में २००० क्विंटल से अधिक महुआ का उत्पादन होता है। महुआ चुनने के लिए एक अजीब तरीका अपनाया जाता है। शाम को वृक्ष के नीचे आग जला देते हैं ताकि पत्ता जल जाय और फूल ही रह जाय जिससे संग्रहण में सुविधा हो। महुआ के अनेक उपयोग हैं। फूल सिंझा कर खाया जाता है। फिर इससे शराब बनायी जाती है। दवा के रूप में भी इसका प्रयोग होता है। डोरी से तेल निकाला जाता है। इसके तेल से पकवान (पूड़ी–पीठा) बनाया जाता है। इस प्रकार जनजातीय जीवन में महुआ खाद्य पदार्थ व पेय पदार्थ के साथ ही आय के स्रोत के रूप में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। राँची डिवीजन में १२१ और जमशेदपुर डिवीजन में २७७ मीट्रिक टन महुआ का उत्पादन (१९९६) में हुआ। विशुनपुर प्रखंड में महुआ के पेड़ों की अधिकता के कारण महुआ टोली गाँव का नाम ही रखा गया है।

करंज

करंज यहाँ बहुतायत से पाए जाते हैं। गरीब ग्रामीण इसके दतुवन बेचकर कुछ कमा लेते हैं। टोंटो प्रखंड के टेराबेरा गाँव का एक पूरा जनजातीय परिवार करंज दतुवन बेचकर ही जीवन–यापन करता है। इसका तेल भी बड़ा उपयोगी और गुणकारी होता है। इसे अपने उपयोग में लाने के साथ ही बेचा भी जाता है। दिवाली के अवसर पर यहाँ दीये में करंज तेल जलाने का प्रचलन है। करंज तेल कृमि नाशक होता है। रूसी–जुआ को दूर करने के लिए सिर में लगाया जाता है। साबुन उद्योग में भी इसका प्रयोग होता है।

इमली

इमली भी बहुत उपयोगी वन पदार्थ है। घरेलू उपयोग तो है ही, इसे जनजातियाँ चुनकर जमा कर बेचती भी हैं। टोंटो प्रखंड में इमली के पेड़ बहुत मिलते हैं। झींकपानी पंचायत से केवल १५०–१६० क्विंटल इमली का व्यापार होता है। झींकपानी बाजार में ही मुख्य रूप से बिक्री होती है। टोंटो

प्रखंड में उत्पादित इमली की मुख्य मंडी चाईबासा है जहाँ से आन्ध्रप्रदेश और तमिलनाडु तक माल भेजा जाता है। इसका प्रयोग साबुन बनाने के लिए होता है। सिंहभूम का काला साबुन उदाहरण है। पुरानी इमली का प्रयोग जानवरों की दवा के लिए होता है। इसका बीज का सिंझा कर खाने के काम में भी आता है। प्रायः हर जनजातीय परिवार इमली गाछ से इसका संग्रह कर खाते–बेचते हैं। इसका संग्रह कठिन और श्रम साध्य कार्य है और मौसम में इसे इकट्ठा करने में पूरा परिवार व्यस्त रहता है।

सवई घास

सवई घास का भी जनजातीय जीवन में बहुत महत्त्व है। यह घास काफी मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। इसे काट, सुखा और मुट्ठा बांधकर ग्रामीण जनजातीय लोग बाजार में बेचते हैं। इस घास से रस्सी, चटाई आदि बना कर भी बेचा जाता है। घर के छप्पर छाने में भी इसका प्रयोग होता है। यह कागज–लुगदी उद्योग में कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होता है।

बाँस

विश्व में सबसे अधिक बांस भारत में होता है। बांस दो प्रकार के होते हैंः– बाम्बुल और मानबेल। बाम्बुल मोटा और मानबेल बांस पतला होता है। विश्व में १२३ बांस की नस्ले हैं। झारखण्ड में मानवेल बांस ही अधिक मिलता है। बांस बहुत उपयोगी होता है। इसका प्रयोग अधिकतर घर बनाने में होता है। तम्बू, पंडाल आदि में इसका उपयोग होता है। इसकी पत्ती से पशुओं के लिए औषधि बनती है। बांस से सूप, मौनी, मोढ़ा, सिका–बहंगी, बंशी–बांसुरी, कुमनी, मछली मारने के लिए रॉड आदि बनते हैं। बांस से फर्नीचर तथा सजावट के समान भी बनते हैं। इससे करील जो मिलता है, सब्जी–आचार के रूप में खाया जाता है। करील की बिक्री से जनजातियाँ अच्छी कमाई कर लेती हैं। इन्हें लाभ पहुँचाने के लिए १९८१–८२ से बांस की ठेकेदारी प्रथा खत्म कर दी गई। केवल बांस के सही प्रयोग से ४० लाख रोजगार की वृद्धि हो सकती है। कृष्ण पक्ष में बांस काटने से उसमें कीड़ा या घुन नहीं या कम लगता है। ऐसे घुन से बचाने के लिए नीम तेल का प्रयोग किया जाता है। विदर्भ में बांस और मिट्टी से इंदिरा आवास बनाने का नमूना सरकार को दिखाया गया है।

सेमल

सेमल से रूई मिलती है जो तकिया, रजाई आदि में प्रयोग की जाती है। इसके फूल का जनजातीय पूजा–पाठ में महत्त्व है। इसकी पत्तियों को चीनी के साथ मिला कर उबाल कर रक्त अल्पता में दवा के रूप में प्रयोग होता है। इसकी लकड़ी दियासलाई, दवा–पेटी अन्य बक्से आदि के लिए काम में आता है।

आम, कटहल, जामुन, बेर, केंद

ये सभी फल खाने के काम में आते हैं और बाजार में बेचे भी जाते हैं। आम–कटहल से सब्जी आचार बनाया जाता है। पक्का कटहल भी खाया जाता है। इसके बीज से भी सब्जी बनती है। आम की लकड़ी पूजा–पाठ में तथा इसकी पटरी भवन–निर्माण तथा उपस्कर बनाने के लिए प्रयोग में आती है। कटहल की लकड़ी में घुन नहीं लगता। बेर फल खाने के काम में आता है और इसका वृक्ष लाह की खेती के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसके फल की बिक्री होती है। इसे सुखा कर चूर्ण बना कर नमक के साथ खाया जाता है और चूर्ण से अन्य पदार्थों का विनिमय भी होता है। बेर का गुड़ा (चूर्ण) बिक्री के लिए बिचौलियों द्वारा बाहर (आंध प्रदेश) भी भेजा जाता है। जामुन चिरहरित वृक्ष है। इसका फल बड़ा गुणकारी होता है। खाने में और औषधि के रूप में भी इसका प्रयोग होता है। जामुन और इसके बीज की बिक्री होती है। जामुन की लकड़ी से जमोट बनता है। यह पानी से सड़ता नहीं है। जामुन बीज का चूर्ण मधुमेह की दवा के रूप में इस्तेमाल होता है।

नीम

नीम से दतुवन, गोंद, तेल, लकड़ी प्राप्त होते हैं। पत्ती कीटनाशक होता है। पत्ती–छाल का औषधीय प्रयोग होता है। इसकी सूखी पत्ती जलाकर, इसके धुएं का मच्छर भगाने में प्रयोग होता है। नीम के तेल का बड़ा औषधीय गुण है। इसकी खल्ली कीटनाशक उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होती हैं जो दीमक से रक्षा करती है। नीम की पत्ती, दतुवन प्रायः बाजार में बेचा जाता है।

आसन-अर्जुन

आसन की छाल को जलाकर तिल तेल के साथ मिलाकर खुजली–दाद की दवा बनती है। अर्जुन की छाल का प्रयोग हृदय रोग के लिए लाभकारी

होता है। इसकी पत्तियों का रस कान दर्द को दूर करता है। इसके सूखे फल को जनजातीय लोग जलावन के काम में लाते हैं।

आंवला, हर्रा, बहेड़ा

इन तीनों का औषधीय गुण होने के कारण बड़ा महत्त्व है और इसकी बिक्री से अच्छी आय हो जाती है। यहाँ का आंवला छोटा होता है जिससे आचार तो बनता है, मुख्बा अच्छा नहीं बनता। आंवला वृक्ष पवित्रता का प्रतीक माना जाता है। आंवला का उत्पादन बहुत होता है। केवल विशुनपुर प्रखंड में ५०० टन का उत्पादन होता है। त्रिफला चूर्ण और च्यवनप्राश में आंवला का प्रयोग होता है। विशुनपुर प्रखंड में हर्रा टोली, आंवला टोली गाँव का नाम ही है। आंवला का प्रयोग बाल धोने में होता है। इससे रूसी दूर होती है और आँख की रोशनी बढ़ती है।

चिरौंजी, पियार, केंद

ये गुणकारी खाद्य पदार्थ हैं। चिरौंजी तो कम, किन्तु पियार और केंद यहाँ के जंगलों में बहुत मिलते हैं। खाने में मीठा और सुस्वाद होते हैं। प्रायः इसकी बिक्री करते जनजातीय महिलाएं बाजार में या घर–घर घूमती देखी जाती हैं। चिरौंजी गुमला जिले में अधिक होता है। एक किलो चिरौंजी के विनिमय में ५० पैला चावल या ३० किलो नमक प्राप्त हो जाता है।

महुलान पत्ती

यह भी एक महत्त्वपूर्ण लघु वन पदार्थ है जनजातीय जीवन में। इसकी पत्ती मुलायम और बड़ी होती है। पत्तल–दोना बनाकर बेचा जाता है। मचान बनाने के लिए भी इसका प्रयोग होता है। इससे एक प्रकार की छतरी (घोघा) भी बनाई जाती है।

खैर

यहाँ के जंगलों में खैर के पेड़ बहुत पाये जाते हैं। पलामू जिला में विशेष कर खैर से कत्था बनाया जाता है। कत्था कीमती चीज होती है, किन्तु कत्था बनाने पर प्रतिबंध है। इसलिए चोरी – चुपके बना लिया तो जाता है, किन्तु इसकी बिक्री बिचौलियों के माध्यम से होने के कारण जनजातियों को विशेष लाभ नहीं होता। इसकी तस्करी छिपादोहर, जोरी, नरमा आदि क्षेत्रों में अभी भी बहुत होती है।

मधु

यहाँ के जंगलों से जनजातीय लोग मधु संग्रह कर बेचते हैं। पूरे झारखंड में १८ करोड़ रुपये का मधु–उत्पादन होता है। अब मधु पालन की प्रक्रिया अपनायी जाती है। यहाँ मधु पालन की संभावनाएँ बहुत हैं। इसका प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। विकास भारती मधु क्रय ४५ रु. किलो के हिसाब से करता है। बिक्री की समस्या सबसे बड़ी है। मधु पालन के लिए बक्सा का मूल्य अधिक है और देशी मधु मक्खी की कीमत २५० रु. है। यह भी एक समस्या है।

तसर - कोकून

तसर का कीड़ा पालने हेतु वनों के अन्दर आसन तथा अर्जुन के पेड़ों का उपयोग करने की अनुमति वन विभाग द्वारा जनजातियों को दी जाती है। शहतूत के गाछ पर या अरण्डी के पौधे पर कीड़ों का पालन अच्छे ढंग से होता है। जनजातियाँ कोया का उत्पादन कर धागे तैयार करती हैं और उनकी बिक्री करती हैं। ये रेशम वस्त्र नहीं बनातीं। इसके धागे से निजी उपयोग में मछली मारने के लिए जाल, गुलेल आदि बनाती हैं। सिंहभूम और संथाल परगना में यह कार्य विशेष रूप से होता है। चन्दना, डमरुहाट, हागापाड़ा आदि गोड्डा प्रखंड के पंचायतों में बहुत बड़ी संख्या में शहतूत के वृक्ष लगाने और रेशम के कीड़े पालने का कार्य साथ–साथ चल रहा है। बिशुनपुर प्रखंड में विकास भारती द्वारा चींगरी, सरेका आदि गाँवों में रेशम–कीड़े पालन का काम हो रहा है जिससे स्थानीय जनजातियों को रोजगार एवं जीविका के साधन उपलब्ध हो जाते हैं। सिंहभूम के टोंटो प्रखंड में तसर–उत्पादन कम होता जा रहा है। यही हाल बानो, महुआडाड़ एवं गारू प्रखंड का है जहाँ न कोई सरकारी सहयोग मिलता है, न कोई स्वयंसेवी संस्था कार्यरत है और लैम्पस तो प्रायः बंद ही रहता है। यहाँ तसर, मरी, मूंगा आदि किस्म के रेशम का उत्पादन होता है पर तसर की ही अधिकता है जिसके कीड़े शहतूत पर पलते हैं।

साग

प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातियों के द्वारा साग का उपयोग खाने और बेचने के लिए किया जाता है। इन्हें सैकड़ों प्रकार की साग की जानकारी और उनके गुण–अवगुण का ज्ञान रहता है। कुछ साग पेड़ों की पत्तियों के रूप में और कुछ साग लता–झाड़ी या छोटे पौधे के रूप में उपलब्ध होती हैं। कोयनार,

फुटकल, कचनार आदि वृक्षों की पत्तियों के रूप में प्राप्त होने वाली प्रमुख साग हैं। इन पेड़ों के कोमल पत्ते, अर्थात् मुलायम फुनगी, तोड़कर संग्रह कर बाजार में बेचे जाते हैं। अनेक सागों में औषधीय गुण पाये जाते हैं जिसके कारण जनजातीय समाज में उनका प्रयोग तो होता ही है, बाहर बाजार, हाट, गाँव में इन्हें बेचा भी जाता है।

आपाभाग का प्रयोग बबासीर और दांत दर्द में, सेंदवार का वात रोग में (सरसों तेल में उबाल कर मालिश,) हड़जोड़वा हड्डी टूटने पर विशेषतः मवेशियों के लिए, पुनर्नवा जांडिस के लिए, धीकुआर जलने पर, चरईगोड़वा ह्रदय रोग में, बेंग साग पेट रोग में तथा अकवन फूल का प्रयोग कुत्ता काटने पर (गुड़ के साथ) होता है। अन्य साग जैसे – घुमा, मूचरी, चिकोड़, साखिन, पेचकी आदि का प्रयोग खाने के लिए होता है। फुटकल साग के प्रयोग का प्रचलन बहुत है। इससे आचार भी बनता है। प्रायः ग्रामीण इलाकों में सभी जनजातीय लोगों के घर में फुटकल की सूखाई साग मिलती है। जिसे मांड़ में नमक हल्दी डालकर सब्जी बनाई जाती है या इसे पीसकर चटनी तैयार की जाती है।

कंद-मूल और छाल

झारखण्ड के प्रायः सभी जंगलों में कंद–मूल की भरमार है। इसका खूब उपयोग होता है, खाया जाता है और बेचा भी जाता है। मुख्य कंद कुंदरी कंदा, पीसका कंदा, असियार, साखीन, पेचकी, शकरकंद, आरू, ओल आदि है। खुखड़ी और रूगड़ा भी इस श्रेणी में आते हैं जो सब्जी के रूप में बहुत लोकप्रिय है और ऊँचे दाम पर बेचे जाते हैं। खैर की छाल से कत्था बनता है। अर्जुन की छाल ह्रदय रोग की औषधि है। बबूल फल–छाल चीनी के साथ मिला कर पीने से खांसी दूर होती है।

पलास

पलास फूल से रंग प्राप्त होता है। बांस पलास फूल के रंग से ही रंगे जाते हैं। पलास बीज का प्रयोग पेट की कृमि को नाश करने के लिए होता है। पलास फूल के परिशोधन से अति कीमती रंग प्राप्त किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कई प्रकार की रस्सियाँ, सवई घास, मुरब्बा, छाल, चोप, पलास, चीहड़, फुटकल, कुदरूम आदि से बना कर बेचा जाता है। जिससे

जनजातीय जनों को कुछ आय हो जाती है। घास से झाड़ू भी बनाया जाता है। झाड़ू उद्योग जनजातीय क्षेत्र में जोर पर है। चटाई और टोकरी उद्योग भी यहाँ महत्त्वपूर्ण है। बांस की टोकरी ज्यादा प्रचलित है। खजूर पत्ते से चटाई के अलावे टोकरी भी बनाई जाती है। चटाई का निजी घरेलू उपयोग ज्यादा और बिक्री कम होती है।

यहाँ के वनों में एक सुगंधित उत्पाद – खस भी मिलता है। जिसे अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। इसकी टट्टी बनती है, शरबत भी। चीहड़ के पत्ते और बांस से बने छाते यहाँ काफी प्रचलित है।

जंगल की लकड़ियों से चारपाई, पावा–पाटी, चौकी, रेक, बेलन, चौखट, खिलौने, कृषि–यंत्र, कंघी–कंघा आदि बनाकर यहाँ का जनजातीय वर्ग थोड़ा–बहुत कमा लेता है।

जनजातियों में घर–घर हड़िया शराब बनाने का काम होता है। यह उनका अति प्रिय पेय तो है ही, व्यज्ञवसायिक रूप में इसकी बिक्री भी होती है। कुछ परिवार तो हड़िया बेचकर ही अपना गुजारा करते हैं। हड़िया बनाने के लिए जड़ी–बूटी वन से ही प्राप्त होती है। जिससे राधुनी/रानू के रूप में तैयार करते हैं जो हड़िया बनाने के काम में आता है।

कुछ वृक्षों, जैसे– केंद आदि अथवा कुछ फल जैसे बेल आदि से गोंद प्राप्त किया और बेचा जाता है।

अनेक औषधीय जड़ी–बूटियां, जैसे– चिरैता, निर्मली, जावा, सीकुर, नगरझरी, कालमेघ, पोजो आदि संग्रह कर बेची जाती हैं। साथ ही बीमारियों में इसका प्रयोग किया जाता है। चिरैता का प्रयोग ज्वर, खुजली तथा खून साफ करने के लिए, सेंदवार का वातरोग में, गुलर का प्रसूति रोग में, तथा अन्य जड़ी–बूटियों का विभिन्न रोगों में प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लघु वन पदार्थ जनजातीय जीवन का केन्द्र बिन्दु है तथा सामाजिक धुरी एवं आर्थिक रीढ़ है। वन पदार्थों का उनके जीवन में अनेक उपयोग है। भोजन, वस्त्र, आवास के लिए तो वन पदार्थों का महत्त्व इनके जीवन में सर्वोपरि है। वन पदार्थों से आर्थिक आय या नगदी कमाई भी हो जाती है।

निष्कर्ष

वन–वनस्पति प्रकृति–प्रदत्त, मानव को अमूल्य उपहार है। झारखण्ड का पठारी भाग जो झारखण्ड का सर्वाधिक मुख्य वनाच्छादित भाग है जहाँ झारखण्ड की ६०% जनजातीय आबादी पाई जाती है, वन–सम्पदा से परिपूर्ण है और लघुवन पदार्थों का विपुल भंडार है।

राष्ट्रीय वन–नीति (१९५२) के अनुसार कुल भूमि के एक तिहाई भाग पर वन होना चाहिए। १९५२ में कुल भौगोलिक क्षेत्र का २२% वनाच्छादित था। अब केवल आधा रह गया है। आज के आधुनिक–वैज्ञानिक युग में अनेकानेक उपलब्धियों को प्राप्त कर लेने के उत्साह में मनुष्य भूल जाता है या भूल गया है कि इस क्रम में प्रकृति का जो अंधाधुंध दोहन हो रहा है उससे हम विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। वनों का तेजी से विनाश इसका एक उदाहरण है और प्रमुख समस्या है।

वनों के विनाश के कई कारण हैं जिनमें ईंधन, इमारती कार्य एवं रेल मार्ग के लिए लकड़ी की बढ़ती मांग, खेती के लिए अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता, दावाग्नि, जनजातियों द्वारा अपनायी जाने वाली झूम खेती प्रणाली, ढालों पर खेती तथा अत्यधिक पशुचारण आदि प्रमुख हैं।

वन–विनाश से अनेक हानियाँ होती हैं, जैसे जलवायु शुष्क हो जाती है, वर्षा की कमी और भूमि अनुपजाऊ हो जाती है, जल–प्रवाह में तेजी आ जाने के कारण भूमि–क्षरण होता है, बाढ़ का प्रकोप बढ़ जाता है। भूमिगत जल संसाधन में ह्रास होता है। ईंधन की कमी होती है, वनाधारित उद्योगों के लिए कच्चे माल तथा चारे का अभाव होता है तथा जड़ी–बूटियों एवं जीव–जंतुओं का विनाश होता है। इससे पर्यावरण असंतुलित अथवा प्रदूषित होता है।

अतएव वनों का रक्षण–संरक्षण आवश्यक है। नयी वन–नीति, १९८८ में केवल वनों पर आश्रित बड़े उद्योगों को प्रश्रय न देने का निर्णय लेकर अच्छा ही किया है। भारत सरकार ने वन्य जीवन संरक्षण (१९७२) कानून द्वारा विलुप्त होने के संकट से ग्रस्त वन्य जीवों के शिकार पर प्रतिबंध का प्रावधान किया है जो बड़े संतोष की बात है, किन्तु केवल कानून बन जाने से ही वन और वन्य प्राणी संपदा को नहीं बचाया जा सकता। इसके लिए सरकारी संकल्प

और जन सहयोग आवश्यक है। जंगल के आस–पास, इर्द–गिर्द रहने वाले स्थानीय लोगों, विशेषकर जनजातियों की सहायता एवं उनका सहयोग समर्थन के बिना जंगलों का संरक्षण कठिन कार्य है। चिरकाल से जंगली क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियों का जीवन एवं आजीविका वनों पर ही मुख्यतः निर्भर है और वनों का संरक्षण उनके हित में है। अतः वनों की सुरक्षा और वृद्धि में सहयोग करना उनका कर्तव्य बनता है। यहाँ वन उत्पादों की स्थिति अच्छी है, संभावनाएँ बहुत हैं।

झारखण्ड में आर्द्र पतझड़ किस्म के मानसूनी वन पाये जाते हैं जिससे अनेक प्रकार की उपयोगी, कीमती लकड़ियों तथा बेशुमार लघु वन पदार्थ प्राप्त होते हैं जिनमें फूल–फल, कंद–मूल, साग, लाह, तसर आदि मुख्य हैं।

लघुवन पदार्थों का जनजातीय जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। अपने निजी उपयोग में लाने के साथ उन वन पदार्थों को बेचकर जीवकोपार्जन करते हैं। बक महोदय (तब के एक कलक्टर) ने वन उत्पादों के महत्त्व का जिक्र करते हुए जनजातीय क्षेत्र के विकास के लिए वन को मुख्य साधन बतलाया था। इससे जनजातियों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो होती है, आय का एक स्रोत भी उपलब्ध होता है। आज भी अनेक जनजातियाँ जैसे बिरहोर, बिरजिया, असुर आदि तथा अनेक जनजातीय परिवार जीवन–निर्वाह के लिए मुख्यतः वनों पर निर्भर हैं। एक बात उल्लेखनीय यह है कि वन पदार्थों के विपुल भंडार होने और वन पदार्थों का श्रम के साथ संग्रहण करने तथा उसके विनिमय विक्रय से जनजातियों को विशेष लाभ नहीं हो पाता। बिचौलियों के कारण, अनियंत्रित व्यापार के कारण, सही भाव, उचित मूल्य एवं सही तौल का लाभ इन्हें नहीं मिल पाता। अनेक लघुवन पदार्थों के उपयोग एवं महत्त्व से अपरिचित– अनभिज्ञ ये लोग उन्हें औने–पौने दाम पर बेच देते हैं। फिर संग्रहण, भंडारण और विपणन की समस्या भी इन्हें समुचित लाभ से वंचित रखती है।

वन–उत्पादों से जनजातियों के आर्थिक जीवन को सुधारने एवं उन्नत बनाने के लिए सरकारी व गैर–सरकारी स्तर पर प्रयास हुए हैं, हो रहे हैं। फिर भी बहुत कुछ करना अभी शेष हैं। इन्हें लाभ पहुंचाने के लिए कोयलकेरा में दियासलाई, लातेहार में रस्सी बनाने तथा संथाल परगना में बीज से तेल निकालने के उद्योग लगाए गए हैं। झारखण्ड राज्य आदिवासी सहकारी

विकास निगम द्वारा लघुवन पदार्थों का लाभकारी मूल्य पर संकलन योजना एक प्रभावी कदम है। विकास भारती ने फलदार वृक्षारोपण बचाव अभियान चलाकर, धरती–रक्षावाहिनी (१६६०–६१) की स्थापना कर पाँच हजार हेक्टेयर भूमि में फलदार वृक्ष लगाने का प्रयास किया है। गरीब आदिवासियों को मुफ्त में साधारण खाना देकर एवं उनके रहने की व्यवस्था कर उन्हें प्रशिक्षण देने के क्रम में उनके श्रम से उत्पादित वन–वस्तुओं को बाहर दूर–दूर तक भेज कर विकास भारती ने नाम के साथ पैसा भी कमाया है, कमा रही है। झारखण्ड राज्य वन विकास निगम ने (अकाष्ट) लघुवन पदार्थों के संग्रहण और विपणन को मुख्य कार्य के रूप में अपना कर जनजातियों को लाभ पहुँचाने का दायित्व सम्हाला है। 'दिव्यायन' भी जनजातीय युवकों को मधुपालन एवं अन्य प्रशिक्षण देकर उन्हें लाभान्वित करने का कार्यक्रम चला रहा है। फिर भी अनेक समस्याएँ हैं और उनका निदान किया जाना है। इसके लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं :– (१) सर्वप्रथम वन विनाश को रोकना या कम करना है। वृक्ष तो कटेंगे ही, परन्तु कटे वृक्ष की जगह नया वृक्ष लगाना जरूरी है। वन–विकास के लिए वृक्षारोपण आवश्यक है। कृषि के अयोग्य भूमि, या परती पड़ी जमीन पर वृक्ष लगाये जा सकते हैं निजी भूमि पर भी वृक्षारोपण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। (२) वृक्षों की कटाई के लिए उचित और वैज्ञानिक पद्धति अपनायी जानी चाहिए तथा संरक्षण के लिए सही वन–नीति बनाकर एक तिहाई भूमि को वनाच्छादित कर देना चाहिए। वन विभाग ने एकेसिया और यूक्लिप्टस के पेड़ ही अधिक लगाया है। उसकी जगह अन्य उपयोगी वृक्षों को लगाया जाना चाहिए। लघुवन पदार्थों से अधिक लाभ जनजातियों को पहुंचाने के लिए कुछ विशेष कदम उठाने की जरूरत है जो निम्नलिखित हैं :–

१. एक से अधिक संस्थाओं को वन पदार्थ का संग्रहण कार्य सौंपा जाना चाहिए।
२. वन–उपजों का सही दोहन तथा उनके उपयोग एवं महत्त्व की जानकारी देनी चाहिए।
३. संग्रहण व्यवस्था वर्ष भर के लिए पूरे समय के लिए होनी चाहिए।
४. वन पदार्थों के भंडारण एवं प्रसंस्करण की व्यवस्था होनी चाहिए।

५. विपणन के लिए शासकीय खरीद एवं निम्नतम मूल्य निर्धारण होना चाहिए।

६. लैम्पस आदि के माध्यम से अधिक क्रय–विक्रय केन्द्र खोले जाने चाहिए।

७. जंगल में रहने वाले लोगों को परिशोधन के तरीके बताने की जरूरत है। आई.आई.टी., दिल्ली के एस.एन. नायक ने जंगल में १६ प्रकार के वन उत्पादन चिह्नित कर उसके उपयोग और महत्त्व को बतलाया है। प्रायः ये लोग साल बीज, करंज बीज, आम की गुठली की कीमत नहीं जानते। गुठली परिशोधन से एक विशेष प्रकार का रंग, स्टार्च और तेल निकलता है जो बहुत कीमती होता है। जनजातियों को इसकी कीमत और परिशोधन के तरीके की जानकारी दी जानी चाहिए। इसी तरह पलास फूल के परिशोधन से कीमती रंग प्राप्त किया जा सकता है। फिर नीम का भी बड़ा महत्त्व है। इसका विश्व बाजार छः मिलियन डालर का है। जंगल में रहने वालों को इन सब बातों और तरीकों की जानकारी मिलनी चाहिए।

८. तकनीकी मार्ग–दर्शन के लिए कार्यशाला का आयोजन होता रहा है। उसे अधिक सघन और प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

९. जड़ी–बूटियों एवं औषधीय पौधों की नर्सरी व्यवस्था करनी चाहिए तथा उनके गुणों की जाँच परख का प्रबंध कर उसके महत्त्व को रेखांकित किया जाना चाहिए। साथ ही उसके प्रयोग–उपयोग को विस्तार देना चाहिए। वर्तमान में हडिंगहोड़े में वैद्य फादर गेबरियल हेम्बरोम जड़ी–बूटी से इलाज कर रहे हैं जो काफी सफल और लोकप्रिय हो रहा है।

१०. लाह की खेती को उन्नत और लाभकारी बनाने के लिए फसल की बीमा, समर्थन मूल्य निर्धारण तथा अन्य सुविधा प्रदान करना जरूरी है।

११. झारखंड की जलवायु में औषधीय पौधों एवं फलदार वृक्षों की खेती की तथा अच्छे उत्पादन की बड़ी सम्भावना है। अतः इस क्षेत्र में प्रसंस्करण–प्रोसेसिंग इकाई लगाकर अचार, मुरब्बा, औषध, चटनी या अन्य उपयोगी चीजें बनाई जा सकती हैं।

१२. इस क्षेत्र के २२.५ हजार हेक्टेयर असिंचित भूमि पर आंवला की खेती की जा सकती है।

१३. वन उपजों पर आधारित लघु कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ, लाह उद्योग बड़े पैमाने और कुटीर उद्योग स्तर पर चलाये जाते हैं, जैसे प. सिंहभूम में चक्रधरपुर – मनोहरपुर में बीड़ी उद्योग पनपे हैं, उसी प्रकार अन्य वन पदार्थों पर आधारित कुटीर उद्योग विकसित किए जा सकते हैं।

१४. मधुपालन की यहाँ बड़ी संभावना है। मधु पालन प्रशिक्षण 'ट्रायसम' अथवा 'दिव्यायन' द्वारा दिया जाता है, किन्तु इसे अधिक व्यापक बनाने की जरूरत है। इसका बक्सा कीमती होता है और देशी मक्खी की कीमत भी २००–२५० रुपये है। अतः सस्ती दर पर बक्से और रानी मक्खी उपलब्ध कराने का प्रयत्न होना चाहिए। मधु की बिक्री समस्या सबसे बड़ी है। इसका उचित मूल्य पर बाजारीकरण होना चाहिए।

जनजातीय औषधियाँ

वनस्पतीय औषधीयाँ पेड़–पौधे, वृक्ष, पौद (झाड़ीदार, फूलदार एवं शाकीय), लता–गुल्म एवं कंद–मूल से उपलब्ध होती हैं। साथ ही कुछ औषधियों को बनाने में जीव–जंतु के अवशेष का भी प्रयोग होता है, झारखण्ड में ऐसे औषधीय पौधों एवं जड़ी–बूटियों का प्रचुर भंडार है। इनका उपयोग–प्रयोग इस क्षेत्र के लोग, विशेषकर जनजातियां, विभिन्न रोगों के उपचार के लिए करते हैं। इसीलिए बोल–चाल की भाषा में इन्हें 'जनजातीय औषधीयाँ' भी कहते हैं, जड़ी–बूटियों द्वारा चिकित्सा पद्धति को 'होड़ोपैथी' नाम दिया गया है जो एलोपैथी, होम्योपैथी की तर्ज पर है।

क्षेत्रीय अध्ययन के आधार पर एवं स्थानीय वैद्यों और ग्रामीणों के द्वारा दी गई जानकारी के आलोक में औषधीय पौधों तथा जड़ी–बूटियों का वर्णन, उसके औषधीय गुणों एवं प्रयोग का विवरण प्रस्तुत किया गया है। अस्तु, उनकी चिकित्सकीय प्रामाणिकता के बारे में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अतः इनका प्रयोग नुस्खे के रूप में नहीं किया जा सकता। लाभ के बदले हानि भी हो सकती है। इस दिशा में शोध–खोज करने तथा चतुर, अनुभवी वैद्यों के सार्थक अनुभूत प्रयोगों की सहायता से इनकी प्रामाणिकता को जांचने–परखने की जरूरत है।

अध्याय - सात

औषधीय जड़ी-बूटियाँ

झारखण्ड के पर्वतीय–वनीय अंचलों में जनजाति एवं ग्रामीण समुदाय निवास करता है। ये गाँव बीहड़ वनों और दुर्गम पहाड़ी स्थानों में बसे हैं जहाँ कोई आधुनिक सुविधा नहीं प्राप्त है। पीने को पर्याप्त शुद्ध पेयजल नहीं, यातायात या संचार के यथेष्ट साधन नहीं, शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं तथा चिकित्सा व स्वास्थ्य सेवा की कोई अच्छी सुविधा नहीं। विषम परिस्थितियाँ और दुश्वार जीवन !

चिकित्सा का मुद्दा अहम महत्त्व रखता है। झारखण्ड के इन इलाकों में, उन जन वर्ग में, जहाँ चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं, कोई अस्पताल नहीं, कोई चिकित्सक–डॉक्टर नहीं, कोई स्वास्थ्य केन्द्र–उपकेन्द्र नहीं, जहाँ स्वास्थ्य के बारे में कोई जानकारी नहीं, वहाँ रोगों का इलाज कैसे होता है, या कैसे हो– एक अहम प्रश्न है।

अशिक्षा, अज्ञानता एवं अंधविश्वास की शिकार ये जनजातियाँ रोगों के कारण प्रेतात्माओं का कोप, जनजातीय निषेधों का उल्लंघन, या डायन के जादू–टोना को मानती हैं। अस्तु, विविध पूजा–पाठ, बलि और ओझा, मति या सोखा का सहारा एक मात्र सहारा रह जाता है। सामान्य रूप से इनके बीच रोग के कारणों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है :–

(क) अलौकिक कारण, जैसे– देवी–देवताओं की नाराजगी, प्रेतात्माओं का कोप,परंपरा का उल्लंघन आदि।

(ख) मानवीय कारण, जैसे– डायन, चुड़ैल आदि का जादू–टोना या बुरी नजर।

(ग) प्राकृतिक कारण, जो रोगों का सही निदान है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति–एलोपैथी या अन्य, के अभाव में जनजातीय समाज रोगों के उपचार के लिए जड़ी–बूटियों का प्रयोग करता रहा है और अभी भी करता है। औषधीय पौधों का रोग निवारण के लिए प्रयोग करने का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ, किंतु इसका विशद–विस्तृत वर्णन अथर्ववेद

में मिलता है, चरक और सुश्रुत वनौषधि प्रवीण माने जाते हैं। 'चरक संहिता' औषधीय चिकित्सा का और सुश्रुत संहिता शल्य–चिकित्सा के उत्तम ग्रंथ के रूप में स्वीकृत हैं। उस काल से लेकर आज तक पंद्रह सौ औषधीय गुणवाले पौधों की जानकारी प्राप्त की जा चुकी है और इनका प्रयोग वैद्य–हकीम, साधु–संत व सिद्धों द्वारा होता रहा है।

औषधि के रूप में जड़ी–बूटियों का प्रयोग प्राचीनकाल से होता आ रहा है। इसके चमत्कारी प्रभाव का वर्णन प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। जड़ी–बूटियाँ वस्तुतः अद्‌भुत वनौषधियाँ हैं एवं असाध्य रोगों के सफल उपचार में भी सफल सिद्ध हुई हैं। जड़ी–बूटियों के सेवन से 'काया–कल्प' तक के प्रमाण मिलते हैं। रामायण काल में लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर मृत्यु के मुख से निकालने के लिए 'संजीवनी बूटी' का प्रयोग हुआ था। गणेश के सिर कटे धड़ में हाथी का मस्तक जोड़ देना प्राचीन शल्य–चिकित्सा का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है।

जड़ी–बूटियों से रोग उपचार की पद्धति आयुर्वेदिक चिकित्सा की पद्धति मानी जाती है। चिकित्सक वैद्य कहे जाते हैं।

प्राचीन काल में राजे–महाराजे के निजी वैद्य हुआ करते थे। यहाँ तक कि देवी–देवताओं के भी वैद्य होते थे जो बड़े निपुण होते थे। धन्वतरि का नाम वैद्यों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि माना जाता है। अजातशत्रु के वैद्य जीवक जड़ी–बूटियों के ज्ञाता थे।

अंग्रेजों के आगमन के पहले सम्पूर्ण रूप से रोगों का उपचार वैद्यों के द्वारा आयुर्वेदीय पद्धति से ही होता रहा और ब्रिटिश शासन काल में भी पहले के कुछ वर्षों तक आंशिक रूप से ही सही आयुर्वेद चिकित्सा चलती रही। उन दिनों मगध–क्षेत्र में वैद्य गाँवों में घूम–घूम कर गरीब–अमीर सभी तरह के रोगियों का उपचार करते रहे। ये वैद्य अपनी दवाएं जड़ी–बूटियों से तैयार करते थे। उन्हें रोगियों से उनके श्रद्धा–सामर्थ्य के अनुसार जो भी मिल जाता, स्वीकार कर लेते। रोग को जांचने–परखने के लिए कोई मनमानी फीस लेने–देने की परंपरा नहीं थी, न कोई खर्चीली पैथोलोजिकल जांच की व्यवस्था थी या जरूरत थी। वैद्य इतने निपुण होते थे कि नाड़ी परीक्षण, आंख–जीभ आदि देख कर रोग का निदान कर लेते थे।

समय बदला और वैद्यों का प्रभाव क्षीण होने लगा और वनौषधियों का प्रयोग घटने लगा। विदेशी शासन में विदेशी भाषा, विदेशी वेश–भूषा, विदेशी

रहन–सहन एवं विदेशी चिकित्सा के प्रति लोगों की ललक बढ़ी। एलोपैथी का प्रचार–प्रसार बढ़ता गया और इसके बढ़ते प्रभाव के कारण स्वदेशी जड़ी–बूटियों द्वारा इलाज का विस्मरण कर दिया गया। किन्तु झारखण्ड में जहाँ जनजातियों की बहुलता रही, जो संपन्न नहीं रहे, जो आधुनिक नहीं हो पाये, उनकी आस्था और विश्वास जड़ी–बूटियों में बना रहा। उनके पास चिकित्सा का अन्य विकल्प– भी मयस्सर नहीं है। अतः ये जड़ी–बूटियों के द्वारा उपचार करते–कराते रहे। यह उनकी आर्थिक विपन्नता का ही मात्र संकेतक नहीं है। यह उनकी संस्कृति का एक अंग है।

आज चिकित्सा की अनेक पद्धतियाँ प्रचलन में हैं, जैसे एलोपैथी, होम्योपैथी, हकीमी, आयुर्वेद, एक्यूपंचर, एक्यूप्रेसर, प्राकृतिक चिकित्सा आदि। इन चिकित्सा प्रणालियों में कौन अच्छी है– यह कहना कठिन है और न यह कहना इस पुस्तक का ध्येय है।

किन्तु यह कहना उचित और उपयुक्त लगता है कि चिकित्सा की एलोपैथी पद्धति अत्यंत खर्चीली है। इससे कुछ रोगों का तो इलाज ही नहीं होता, कम से कम सफल इलाज तो नहीं ही होता। अस्थायी रूप से रोगों का दमन–शमन भले ही हो जाय, रोग जड़ से दूर नहीं होता। एलोपैथी दवाओं का पार्श्व प्रभाव (साइड इफेक्ट) भी होता है। एक रोग अच्छा तो हुआ, किन्तु दूसरा नया रोग उभर जाता हैं यह निर्दोष या हानि रहित पद्धति नहीं है। थोड़ी–सी चूक होने पर जान जाने का खतरा रहता है। दवाएं दवा कंपनियाँ बनाती है, उनके गुणों का प्रचार–प्रसार करती हैं और डॉक्टरों से संपर्क बना कर अपनी कंपनी की दवाओं की अनुशंसा के लिए डॉक्टरों को प्रभावित करती हैं। डॉक्टर केवल नुस्खा लिखते हैं। वे अपनी दवा नहीं देते, कोई दवा नहीं बनाते। यदि बाजार में बिकने वाली दवाओं का लेबल या नाम हटा दिया तो उन दवाओं को जानने–परखने की कोई विधि इनके पास नहीं है। साथ ही एलोपैथी चिकित्सा सुविधा मुख्यतः शहरों में संकेद्रित है। हाँ, एलोपैथी में शल्य–चिकित्सा की अच्छी सुविधा है। भेषज–चिकित्सा में यह पद्धति बहुत धनी नहीं है।

होम्योपैथी चिकित्सा में दोष–रहित औषधियों की प्रचुरता है, किन्तु अच्छे होम्योपैथी चिकित्सकों का अभाव है। फिर भी यह पद्धति बहुत लोक–प्रिय बन गई है। यह एलोपैथी से कम खर्चीली पद्धति है।

जड़ी–बूटियों के द्वारा उपचार की अनेक विशेषताएँ हैं, खास कर जनजातीय जीवन में इसका बहुत महत्त्व है। सुदूर अतीत में इस पद्धति का महत्त्व मिश्र, चीन, भारत आदि में बहुत अधिक रहा और प्राचीन साहित्य में

इसके चमत्कारी गुणों की चर्चा है। बौद्ध–काल में औषधीय पौधों का उल्लेख मिलता है। भारत के औषधीय ग्रंथों में उल्लेखित दो हजार मद या वस्तुओं में केवल दो सौ खनिज या पशु स्रोत से प्राप्त होते हैं, शेष सभी वनस्पतियों से ही उपलब्ध होते हैं।

ग्रामीण और गरीब लोगों के लिए जड़ी–बूटियों द्वारा उपचार सहज–सुलभ और सस्ता है जबकि एलोपैथी चिकित्सा दुर्लभ और महंगी है। जनजातियों के लिए तो यह पद्धति और भी माकूल है। झारखण्ड के जंगलों में ६० प्रतिशत प्राणदायी औषधीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं जिनमें चमत्कारी गुण पाये जाते हैं।

वनौषधियों के पक्ष में कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं :–

- यह सर्वसुलभ और सस्ती है। अतः गरीब–गुरुबा के लिए भी ठीक है।
- इनमें मारक गुण कम और शोधक गुण अधिक है। यह रोगों को दबाती नहीं, बल्कि जड़ से दूर करती है। इसका पार्श्व प्रभाव नहीं होता।
- यह शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के रोगों में लाभदायक होती है।
- लोग कहते हैं कि इस प्रकार की चिकित्सा का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, किन्तु ग्रामीण जनजातियों और वैद्यों का अनुभव बताता है कि लगभग दो तिहाई जनजातीय लोगों का यही एक मात्र विकल्प है।
- इस पद्धति की मौखिक परंपरा रही है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी इसका ज्ञान मौखिक रूप से निस्सारित होता रहा है। कोई औषधीय साहित्य में वर्णन नहीं मिलता।

इस औषधि–पद्धति के विपक्ष में कहा जाता है कि जड़ी–बूटियों की पहचान करने वाले विशेषज्ञ या उनका औषधीय प्रयोग करने वाले सुयोग्य एवं अनुभवी वैद्य बहुत कम मिलते हैं। यह कुछ अंश तक सत्य है। जरूरत है, इस संबंध में ध्यान देने और खोज करने तथा उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था करने की। लम्बी और घोर उपेक्षा के कारण ही ऐसी स्थिति बनी हैं जड़ी–बूटियों की गुणवत्ता व विशेषता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। केवल इसे उपयोगी और लाभप्रद बनाने की चेष्टा की अपेक्षा है।

जड़ी–बूटियों द्वारा उपचार कुछ नियमों से बंधा है। ऐसा भी कहा जाता है कि यह कुछ अंध–विश्वासों से घिरा है। उदाहरणार्थ, जड़ी–बूटियों को लाने–उखाड़ने में कुछ नियम–निषेधों का अनुपालन करना पड़ता है। किस

समय, किस दिन, किस ढंग से औषधीय पौधे को उखाड़ा जाय, काटा जाय या लाया जाय आदि का एक विधान होता है। कुछ जड़ी–बूटी को निश्चित दिन, या समय पर अथवा विशेष अनुष्ठान करके उखाड़ा जाता है और प्रयोग किया जाता है। विशेषज्ञ जड़ी–बूटियों को विशेष विधि–द्वारा पूजन करके या आमंत्रित करके लाते हैं। प्रायः शनिवार या मंगलवार की शाम में जंगल में जाकर इच्छित जड़ी–बूटी को न्योतते हैं और दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व उसे लाते हैं, साथ ही प्रार्थना करते हैं कि इसके प्रयोग से मरीज चंगा हो जाय। इसे 'जड़ी–जगाना' कहते हैं, इनका मानना है कि दवा तो एक माध्यम है, बहाना है, असल में रोगी तो ईश्वर की मर्जी से चंगा होता है। इसीलिए जड़ी–बूटी का प्रयोग करते समय मंत्रोच्चारण या ईश्वर–स्मरण या आहवान किया जाता है। दवा और दुआ –दोनों रोगी को चंगा करने के लिए जरूरी है। आधुनिक पढ़े–लिखे लोग, यहाँ तक कि डॉक्टर भी कहते सुने जाते हैं कि "मेडिसीन क्योर्स व्हेन नेचर ऑफ गॉड क्योर्स"। अतः यह नियम–निषेध भी कुछ अर्थ रखते हैं। इसके पीछे संरक्षण का वैज्ञानिक आधार छिपा है।

वनौषधियों के उपयोग की भी विधि है। ऐसा माना जाता है कि प्रौढ़ावस्था में उखाड़ी गई जड़ी–बूटियाँ अधिक प्रभावी होती हैं। फिर पौधों के विभिन्न भागों के गुण भी अलग–अलग होते हैं। अतः किसी दवा के लिए पत्ती का, फल का, फूल का या जड़ का प्रयोग होता है। कुछ पौधों की पत्तियाँ, कुछ के फूल, कुछ की जड़, किसी के अन्य भाग ही गुणदायक होने के कारण प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :–

१.	जड़	सर्पगंधा, मुलेठी, चिकोड़ी आदि।
२.	भूमिगत तना	हल्दी, अदरख, प्याज आदि।
३.	छाल	अर्जुन, अशोक, कचनार आदि।
४.	पत्ता.	तुलसी, घृतकुमारी, ब्राह्मणी, नीम आदि।
५.	फूल	उड़हूल, धावा, गुलाब आदि।
६.	फल	बेल, आंवला, अमलतास, धनिया आदि।
७.	तना–कास्ट	चंदन, खैर, पाइन आदि।
८.	बीज	इसबगोल, करंज, इमली आदि।
६.	गुठली	आम, जामुन आदि।
१०.	गुद्दा	केला, बेल, शरीफा, आम आदि।
११.	संपूर्ण पौधा	चिरैता, ब्राह्मणी आदि।

जनजातीय औषधियों (जड़ी–बूटी) के साथ उचित अनुपान का भी प्रयोग होता है, जैसे कुछ औषध गुड़ या मधु या गोलमिर्च के साथ, तो कुछ चावल के धोवन, मिश्री आदि के साथ प्रयोग किये जाते हैं। कुछ दवा ठण्डे जल के साथ, तो कुछ गुनगुने गर्म जल के साथ या फिर कुछ दूध, दही या घी के साथ खायी जाती है। आयुर्वेद में अनुपान का बहुत महत्त्व है और विशेष व्यवस्था है। अनुपान औषध के प्रभाव को त्वरित करता है। अतः इसकी जानकारी अनिवार्य है।

इस पद्धति में जड़ी–बूटियों से चूर्ण, गोली, लेप या काढ़ा बनाकर प्रयोग में लाया जाता है। प्रायः ताजी उखाड़ी गई–जड़ी–बूटी उत्तम मानी जाती है। प्रौढ़ावस्था में उखाड़ी गई जड़ी–बूटी अधिक प्रभावी व लाभदायक होती है। झारखण्ड में जनजातियों को जड़ी–बूटियों की अच्छी जानकारी, पहचान–ज्ञान है। यहाँ के वन औषध–भंडार है। भंडारण की समुचित व्यवस्था के अभाव में प्रायः ताजा जड़ी–बूटियों को ही वे काम में लाते हैं। अब तो जड़ी–बूटियों का प्रयोग सौन्दर्य प्रसाधन के लिए होने लगा है। अति ख्यात शहनाज हसन सौन्दर्य प्रसाधन के लिए मूलतः व मुख्यतः जडी–बूटियों का ही इस्तेमाल करती है। जड़ी–बुटियों से चिकित्सा के क्षेत्र में डा. जैन की पुस्तक काफी लोकप्रिय है। हाटिंगहोड़े गाँव (गुमला जिला) के प्रसिद्ध डॉक्टर गेबरियल हेम्ब्रोम जड़ी–बुटियों से ही इलाज करते हैं। उनके पास दूर–दूराज से विभिन्न रोगों से पीड़ित मरीज आते हैं और लाभान्वित होते हैं। उन्होंने इस चिकित्सा पद्धति को 'होड़ोपैथी' नाम दिया है।

इस प्रकार के इलाज में 'पथ्य' का भी ध्यान देना पड़ता है। 'पथ्य' अर्थात् दवा सेवन करते समय या रोग दूर होने तक क्या खाना चाहिए अथवा किन चीजों से परहेज करना चाहिए। पथ्य–परहेज का दवा से कम महत्त्व नहीं है, क्योंकि कुपथ्य से रोग निवारण में विलंब हो सकता है या हानि भी हो सकती है।

फिर सेवन–विधि भी महत्त्वपूर्ण है, मात्रा और समय का पूरा ध्यान रखा जाता है। कोई दवा एक बार, कोई दो बार, तीन बार या अधिक बार खिलायी जाती है। कुछ दवा खाली पेट, कुछ नास्ता के बाद या कुछ भोजन के पश्चात् दी जाती है। एलोपैथी दवाएं प्रायः नियमतः खाली पेट में नहीं खाई जातीं। इसके विपरीत जनजातीय औषधियों का प्रयोग प्रायः खाली पेट में ही होता है।

अक्सर ये औषध सुबह–शाम खाये जाते हैं। जल के साथ दवा सेवा करने के विधान में प्रायः ठंडे जल का ही प्रयोग होता है। विशेष स्थिति में ही गर्म जल का प्रयोग होता है और इसके लिए विशेष निर्देश दे दिया जाता है।

झारखण्ड के पठार कीमती खनिज से भरे हैं तो यहाँ कि वन बहुमूल्य जड़ी–बूटियों के भंडार हैं। किन्तु यहाँ के लोग, विशेष कर जनजातियाँ उतने सम्पन्न नहीं है कि खर्चीली विदेशी या एलोपैथी चिकित्सा से लाभ उठावें। दूर–दराज जंगलों व पहाड़ों के बीच बसे गाँव जहाँ चिकित्सा की सुविधा नहीं है या कम है या दुर्लभ है, वहाँ के लोग जड़ी–बूटियों के उपचार से अपने को स्वस्थ और दीर्घायु बनाये रखने में सक्षम रहे हैं। इसीलिए जड़ी–बूटी द्वारा चिकित्सा करने या जड़ी–बूटी से दवा तैयार करने के कारण इसे 'जनजातीय औषधि' की संज्ञा दे दी गयी है। जिसे ये जनजातियाँ मौखिक परंपरा के द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी जीवंत बनाये हुए है।

अध्याय - आठ

औषधीय पौधों का दोहन, संरक्षण एवं भंडारण

वनस्पतीय औषधियों की कुछ विशेषताएँ हैं। ये हानिरहित, सस्ता और सुलभ हैं। ये औषधीयां जड़ी–बूटियों और औषधीय पौधों से बनायी जाती है। इन जड़ी–बूटियों का प्रयोग तुरंत उखाड़ कर जीवित या सूखी अवस्था में किया जा सकता है। इन जड़ी–बूटियों के दोहन में ध्यान रखना आवश्यक है कि ये प्रौढ़ावस्था में ही उखाड़ी जानी चाहिए तभी ये कारगर और प्रभावी सिद्ध होती हैं। जड़ी–बूटियों का दोहन या संकलन अक्टूबर से मई तक उत्तम माना जाता है। जड़ी–बूटियों के सही दोहन के नियम–निषेध बनाये गये हैं। पहले जब घने जंगल थे, औषधीय पौधे प्रचुर मात्रा में थे। तब दोहन की समस्या नहीं थी। फिर उस काल के चिकित्सा से जुड़े लोगों में इतनी दूरदर्शिता थी कि इन औषधीय पौधों के संरक्षण हेतु दोहन के कुछ नियम बनाकर आस्था–विश्वास से जोड़ दिया गया था। उनका पूर्वानुमान था कि भविष्य में इनकी कमी हो सकती है। इसलिए दोहन–प्रक्रिया पर कुछ प्रतिबंध लगा दिये थे। संरक्षण वैज्ञानिक आधार को एक धार्मिक रूप देकर लोगों में यह विश्वास बैठा दिया गया था कि नियमानुसार औषधीय पौधों का दोहन नहीं करने से उनके औषधीय गुण का ह्रास या समापन हो जाता है। इसे भले ही कोई अंध–विश्वास कहे किन्तु इसमें संरक्षण का वैज्ञानिक आधार छिपा है। अति या अनुचित दोहन पर प्रतिबंध या नियंत्रण लगाने का यह अनूठा ढंग है। इससे जड़ी–बूटियों एवं दुर्लभ उपयोगी पौधों का संरक्षण होता है। नमूने के तौर पर दोहन के कुछ नियमों पर ध्यान दिया जा सकता है और उनके महत्त्व को आंका जा सकता है :–

१. जड़ी–बूटियों को प्रौढ़ हो जाने पर ही उखाड़ा जाना चाहिए। तभी वह अधिक प्रभावी हो सकता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि प्रौढ़ावस्था में जड़ी–बूटी से अधिक मात्रा में औषधीय तत्व प्राप्त हो सकता है जिसके लिए कई शिशु–पौधों को उखाड़ना पड़ सकता है।

२. नदी–नाले के किनारे धूल पर निकली जड़ों का प्रयोग अधिक लाभदायक होता है। अतः उसे उखाड़ा जाता है। स्पष्टतः इसमें दो महत्त्वपूर्ण बातें

छिपी हैं। एक, ऐसे पौधे को उखाड़ना आसान है, मिट्टी का क्षरण नहीं होता और दूसरा, ऐसे पौधे को नहीं उखाड़ने से स्वतः पानी के प्रवाह से उखड़ कर, बह कर व्यर्थ हो जाने की संभावना है।

३. कुछ पौधे को एक श्वांस में उखाड़ना होता है जैसे चिड़चिड़ी, वस्तुतः चिड़चिड़ी में अनेक जड़–सोर होती हैं। इस प्रकार से उखाड़ने से कुछ जड़े मिट्टी में रह जाती हैं और नया पौधा फूट जाता है।

४. कुछ जड़ी–बूटी को सुबह तड़के– लोगों की नजर बचाकर एक ही झटके में उखाड़ लेना चाहिए। इसके पीछे भी वैज्ञानिक तथ्य है। देखा–देखी कोई काम करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। किसी को कोई पौधा उखाड़ते देखकर कोई दूसरा व्यक्ति भी निष्प्रयोजन ही पौधा उखाड़ सकता है। इसीलिए चुपके से, फूर्ति से उखाड़ने की अनुशंसा की गई है।

५. छाल नीचे से ऊपर की ओर छिली जानी चाहिए। छाल प्रौढ़ पेड़ से उतारी जानी चाहिए। इसमें भी संरक्षण की भावना छिपी है। परिपक्व तनों की छाल ही सदा उत्तम होती है।

६. टहनी लेते समय गहरी काट न हो इसका ध्यान रखा जाता है। हल्की काट से प्राप्त टहनी अधिक लाभदायक होती हैं। यहाँ भी संरक्षण का ही भाव है।

७. कंद निकालने पर गड्ढे को मिट्टी से भर देना तथा कंद का कुछ भाग मिट्टी में छोड़ देना चाहिए या काटकर मिट्टी में गाड़ देना चाहिए ताकि वह पुनः पनप सके।

८. किसी पौधे की जड़ भी पूरी की पूरी नहीं उखाड़नी चाहिए बल्कि कुछ छोड़ देनी चाहिए ताकि नया पौधा उग सके। अगर मात्रा कम पड़ जाये तो ऐसे कई पौधों से जड़ लेना चाहिए।

९. किसी पौधा से गोंद बिना गहरे काटे, हल्का घाव करके प्राप्त करना उचित है। गोंद वर्षा ऋतु में संकलन करना निषेध है। गोंद ग्रीष्म ऋतु के प्रवेश काल में ही जमा करना चाहिए।

१०. वर्षाजीवी पौधों को उसके बीज गिरने के बाद ही उखाड़ा जाना चाहिए। इसमें भी संरक्षण–संवर्द्धन की भावना छिपी है।

११. कुछ पौधों को विधिवत् पूजन कर या आमंत्रित करके उखाड़ा जाता है। प्रायः शनिवार या मंगलवार की शाम में, जंगल में जाकर इच्छित जड़ी को न्यौता दिया जाता है और दूसरे दिन सूर्योदय के पहले उसे लाया जाता है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि किसी जड़ी को उखाड़ने के पूर्व उसका भली–भांति निरीक्षण–परीक्षण कर लिया जाय।

जड़ी–बूटी तथा औषधीय पौधों का उचित भंडारण आवश्यक है। पहले भंडारण की वैसी कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उस समय घने जंगल थे, जंगलों में औषधि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। जब जरूरत पड़ी, ताजा पौधे उखाड़ लिये जाते थे और उनका उपचार में प्रयोग होता था। अब वन उजड़ते जा रहे हैं, पहाड़ नंगे होते जा रहे हैं। वनस्पतियाँ दुर्लभ एवं लुप्त होती जा रही हैं। जब चाहा, तब जड़ी–बूटी मिल नहीं पाती। स्थानीय या समीपस्थ परिवेश में मिल नहीं पाती। अतः दूर–दराज से जड़ी–बूटियों को लाकर भंडारण की विशेष आवश्यकता पड़ गई है।

वनस्पतीय औषधियों का भंडारण दो प्रकार से किया जा सकता है – जीवित भंडारण और सूखा भंडारण। जीवित भंडारण के लिए परती भूमि पर खेतों की मेड़ों पर, मैदानी भागों में तथा घर–वाड़ी में औषधीय पौधों को लगाया जा सकता है और उनक संरक्षण–भंडारण किया जा सकता है। जंगल ही जीवित औषधियों का भंडार–घर बन जाता है। किन्तु सभी जगह आवश्यक या दुर्लभ जड़ी–बूटियाँ अब नहीं मिल पातीं। इसलिए उनका संकलन करना आवश्यक हो जाता है। जड़ी–बूटियों का संकलन अक्टूबर से मई तक अच्छा समझा जाता है। उन्हें भली–भांति धोकर सुखाना चाहिए। छाया में इन्हें सुखाना अधिक गुणकारी माना जाता है। वैसे धूप में भी सुखाया जाता है किन्तु औषधि–विशेष को छाया में ही सुखाने की विधि है। पहचान के लिए विभिन्न जड़ी–बूटियों को अलग–अलग बंडल या पुलिंदा में रखना और उस पर नाम लिख देना या संकेत बना देना जरूरी है। फफूंदी से बचाने के लिए समय–समय पर धूप दिखाना भी आवश्यक है। जड़ी–बूटियों से चूर्ण बना देने पर उसके संरक्षण–भंडारण के लिए हवा–बंद डिब्बों या बोतलों में ढक्कन लगाकर रखना चाहिए। उसे नमी से बचाना अनिवार्य है। डब्बों या बोतलों पर नाम लिखकर लेबल चिपका देना चाहिए ताकि पहचानने में कोई दिक्कत न हो। यदि जड़ी–बूटियों के चूर्ण से गोली बनाई जाती है तो उसे छाया में

सुखाना और कभी–कभी धूप दिखाना चाहिए। कभी–कभी गोली को किसी रस का संपुट देना होता है और कई बार देना होता है। इसके बाद छाया में ही सुखाना होता है। जड़ी–बूटी से क्वाथ या काढ़ा भी तैयार किया जाता है। इसे भी सुरक्षित रखने का पूरा प्रबंध करना चाहिए। औषधीय जड़ी–बूटी सूखी स्थिति में एक वर्ष तक और चूर्ण के रूप में दो वर्ष तक प्रभावी रहती है। उसके बाद उसके गुण मंद, तासीर में ह्रास होने लगता है। काढ़ा को सुरक्षित रूप में भंडारण के लिए गुड़ या मधु मिला दिया जाता है। चूर्ण ढेला बनने लगे तो धूप दिखाना और गोली सटने लगे तो भी धूप दिखाना जरूरी है।

अति या अनुचित दोहन, जंगलों की अंधाधुंध कटाई, अतिचारण या अगलगी आदि के कारण जड़ी–बूटियाँ दुर्लभ व लुप्त होती जा रही हैं। उनके संरक्षण एवं संवर्द्धन पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

अध्याय - नौ

औषधीय पौधों का विवरण

अर्जुन

वैज्ञानिक नाम : टरमिनेलिआ अर्जुना

अर्जुन एक विशाल सदाबहार वृक्ष होता है। अर्जुन को ककुम या नदी सरजा भी कहा जाता है। यह झारखण्ड में पाया जाता है। जो जल के निकट नदी, नालों तथा तालाब के किनारे अधिक पाया जाता है। वृक्ष की छाल बाहर से सफेद पर अंदर से चिकनी, मोटी तथा हल्के गुलाबी रंग की होती है। इसका स्वाद कसैला एवं तीखा होता है।

औषधीय गुण

अर्जुन वृक्ष के छाल को गुड़ में मिलाकर दूध के साथ औटाकर प्रतिदिन सुबह में खाली पेट में पीने से ह्रदय की बीमारी में चिकित्सा के लिए यह एक दिव्य औषधि है। इसके काढ़ा का अल्सर की बीमारी में उपयोग किया जाता है। इसकी छाल स्तम्भक होती है। ज्वर, हड्डी टूटने तथा अंदरूनी चोट में यह उपयोगी है।

अर्जुन छाल के साथ रोहिन छाल और कठजामुन छाल को बराबर मात्रा में मिलाकर पीसा जाता है। एक से दो चुटकी चूर्ण दिन में दो बार चावल के धोवन पानी के साथ १५–२० दिनों तक देने से श्वेत प्रदर (ल्यूकोरिया) ठीक होता है। वृद्धावस्था में पीठ दर्द होने पर इसके छाल को पीसकर बनाए गए लेप को लगाने से आराम होता है। वृक्ष के पत्तों एवं कोंपलों का कान के दर्द तथा मुख – रोगों के उपचार हेतु प्रयोग किया जाता है।

अडूसा

वैज्ञानिक नाम : एढ़ेटोड़ा वासिका

अडूसा एक सदाहरित पौधा होता है। इसकी शाखाएँ हल्के पीले रंग की होती हैं जो अत्यंत विभाजित और घनी होती हैं। इसके पत्ते बड़े एवं लंबे होते हैं। फूल सफेद होते हैं। उनकी पंखुड़ियों (दल) पर गुलाबी या बैंगनी रंग की

लकीर–सी होती है। अडूसा के फल एक छोटी–सी संपुटिका होती है जिनमें छोटे–छोटे फल और बीज होते हैं।

अडूसा के पौधे मैदानी तथा पर्वतों की तलहटी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यह अधिकतर शहरों के आबादी के आस–पास भी होते हैं। इसके पत्तों एवं जड़ का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है।

औषधीय गुण

अडूसा के सुखाये हुए पत्ते औषधि के काम में आते हैं। पत्ते में बसीसीन एल्केलाइड तथा वाष्पशील तेल पाया जाता है। वासक कफ निस्सारक गुण के कारण प्रसिद्ध है। इसका शर्बत, रस या अर्क प्रयोग होता है। इसके सेवन से बलगम या कफ पतला होकर सुविधापूर्वक निकल जाता है। इस कारण यह श्वास नली की सूजन या दमा–खांसी, बलगम में उपयोगी है। इसका अधिक मात्रा में सेवन करना हानिकारक होता है। व्याकुलता एवं वमन (उल्टी) होने की संभावना रहती है। अडूसा की जड़ में ६ गोल मिर्च पीसा जाता है। थोड़ा पानी मिलाकर पीते रहने से नाक से रक्त बहना बन्द हो जाता है।

अशोक

वैज्ञानिक नाम : सराका इण्डिका/अशोका

अशोक एक छोटा सदाहरित वृक्ष है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं। पत्ते शाखाओं पर बहुत अधिक संख्याओं में और घने–घने लगते हैं। जिससे वृक्ष हरा–भरा–सा दिखता है। फूल गुच्छों में आते हैं और फली में कई बीज होते हैं। तना कुछ लालिमा लिये भूरे रंग का होता है।

औषधीय गुण

अशोक वृक्ष की छाल को सुखाकर औषधि के रूप में प्रयोग करते हैं। यह मासिक धर्म के समय अत्यधिक रजस्राव को रोकती है। इसमें स्तंभक गुण है। यह गर्भाशय को शांति पहुँचाती है और इससे संबंधी सभी रोगों में अत्यन्त लाभकारी है। अशोक के फूलों को पानी में पीस कर खूनी अतिसार में देते हैं। इसके बीज को मूत्र के साथ शक्कर आना अर्थात् मधुमेह नामक बीमारी में उपयोग किया जाता है। इस वृक्ष की पत्तियों तथा छाल को जलाकर इसकी राख को तिल के तेल में मिलाकर जले हुए स्थान पर लगाने से घाव जल्दी भरता है।

अमलतास

वैज्ञानिक नाम : कास्सिआ फिस्टुला

अमलतास एक छोटा या मंझोली ऊंचाई का वृक्ष होता है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं। पत्रक बड़े चमकीले और गहरे रंग के होते हैं। इसके फूल पीले रंग के बहुत बड़े लटकते हुए गुच्छे में होते हैं। इसके फल काले व चमकीले गहरे काई रंग के होते हैं जो देखने में बांसुरी के आकार के होते हैं। इसकी छाल को सोमारी कहते हैं जिसमें टेनिन प्रचुर मात्रा में होते हैं। इस पेड़ से लाल रंग का रस भी निकलता है। यह सदाहरित वनों में अधिक होता है। प्रायः सड़कों के किनारे तथा उद्यान में पाया जाता है।

औषधीय गुण

औषधि के रूप में इसका फल उपयोगी है। फल का गुद्दा रेचक के रूप में प्रयोग किया जाता है। गुद्दा को कस्सिआप्लप कहते हैं। अधिक मात्रा में सेवन करने से यह हानिकारक है और अधिक पतले दस्त, मिचली तथा उदरशूल हो सकता है। इस औषधि को सनई के पत्ते में मिलाकर ही सेवन किया जाता है। अमलतास के वंश की एक अन्य जाति सनई है जो एक छोटी झाड़ी होती है। इसके पत्ते तथा फल रेचक और कब्ज पुराने रोगियों के लिए उपयोगी है। टी.बी. की बीमारी में यह उपयोगी है। इसकी जड़ को दूध में औटाकर पीने से किसी भी प्रकार की टी. बी. में लाभदायक होता है। यदि इसकी जड़ को घिसकर दाद में लगाया जाय तो वह ठीक हो जाता है। इसका कल्प बनाकर यदि एक सप्ताह सेवन किया जाय तो किसी भी प्रकार का गठिया ठीक हो जाता है। अमलतास की जड़ का काढ़ा बनाकर दो–दो चम्मच दो से तीन बार ७ से १० दिनों तक देने से विषम ज्वर में लाभदायक होता है। अमलतास के पके फल का गुद्दा तथा अनन्तमूल की जड़ में घर की मकड़ी को बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर मटर के बराबर गोली बनाकर दिन में एक बार देने से तथा शरीर पर मलने से बेचैनी ठीक होती है। इसके पत्तों को पानी में पिसकर लगाने से जले हुए स्थान पर आराम मिलता है।

अमलतास के फल का गुद्दा का चूर्ण दो–दो चुटकी एक–दो चाय चम्मच मधु के साथ खिलाने से रक्त (खून) में शर्करा की कमी दूर होती है।

अश्वगन्धा/असगंधा

वैज्ञानिक नाम : वीदानिआ सोम्नीफेरा

यह एक छोटी झाड़ी होती हैं। इसके तने और शाखाओं पर सूक्ष्म तारा के आकार के रोम होते हैं। पत्ते लंबे, अंडाकार होते हैं। फूल केलई के रंग के होते हैं। फूल छोटे गुच्छों में होते हैं। फल गोल चिकने व लाल होते हैं। यह प्रायः शुष्क स्थानों में मिलते हैं।

औषधीय गुण

इसकी जड़ औषधि के काम में आती है। यह गठिया, दुर्बलता और क्षयरोग में उपयोगी एवं इसमें वायोटिक तथा एण्टी बैक्टीरियल गुण होते हैं। जड़ों को पीस कर फोड़े, जख्म और सूजन पर लगाने से लाभप्रद परिणाम मिलता है। इसके फल पाचन संबंधी तथा जिगर के विकारों में उपयोगी होते हैं। असगंध की जड़ के साथ सिन्दवार की जड़ बराबर मात्रा में मिलाकर पीसकर गोली बना दिया जाता है। सुबह शाम मधु या पुराने गुड़ के साथ १५–२० दिनों तक खाने से जिद्दी या दुराग्रही घाव में लाभदायक होता है।

आँवला

वैज्ञानिक नाम : एम्बलिका आफ्फीसिनालिस

आँवला छोटा या मझोला होता है। इसके पत्ते बहुत छोटे और पास–पास लगे होते हैं जो हरा होता है। फूल केलई रंग के और अधिकतर पत्तों के नीचे की ओर छोटे गुच्छों में लगते हैं। फल हरे, सरस और गोल होते हैं उन पर हल्के रंग की धारियां–सी होती हैं। फल में बीज होते हैं।

आँवला के वृक्ष झारखण्ड क्षेत्र में सभी जगह पाए जाते हैं। आँवला विशेषकर जंगल में पाया जाता है। इसका बगानों और घर में भी रोपण किया जाता है। इस तरह के वृक्षों के फल बड़े होते हैं। अध्ययन के क्रम में पाया गया कि वनों में इसका फल नष्ट भी हो जाता है और आस–पास के जनजातीय लोगों द्वारा इसका उचित प्रयोग नहीं हो पाता हैं। आजकल इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

आँवले के फूल, जड़ एवं छाल सभी में कुछ–न–कुछ औषधीय गुण

बतलाए जाते हैं, लेकिन वृक्ष के ताजे या सुखाए हुए फल ही औषधि या दवा में काम आते हैं। त्रिफला में पड़ने वाले तीन फलों में से एक आँवला है और अन्य दो हर्रा और बहेड़ा हैं। त्रिफला रेचक होता है जो जिगर बढ़ जाने पर उदर विकारों, बवासीर में तथा नेत्र रोगों में उपयोगी या लाभप्रद है। फलों से बना सिरका अपच, रक्तक्षीणता, कुछ प्रकार के हृदय रोग तथा जुकाम में उपयोगी होता है। इसमें विटामिन "सी" प्रचुर मात्रा में होने के कारण इसकी कमी से होने वाले रोग स्कर्वी में यह (आँवला) लाभप्रद होता है। इसके सूखे फल अतिसार एवं पेचिस में उपयोगी हैं। इसके बीज दमा और उदर की बीमारियों में उपयोगी बताए जाते हैं।

पलामू जिला के गारु प्रखण्ड के क्षेत्रीय भ्रमण के क्रम में पाया गया कि इस क्षेत्र के उरांव, बिरजिया कोरवा, खरवार, असुर जनजातियों द्वारा इसका प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है। साक्षात्कार के दौरान इन लोगों ने बतलाया कि कच्चा या सूखा आँवला उबालकर उसका खाली पेट में लगभग दो दिन पिलाने से पेचिश में लाभ मिलता है अर्थात् ठीक हो जाता है। इसका प्रयोग लू से बचने के लिए भी किया जाता है। आँवला फल के साथ हर्रा तथा बहेड़ा बराबर मात्रा में मिलाकर त्रिफला चूर्ण बनाया जाता है जो कि मासिक गड़बड़ी में लाभप्रद होता है।

मांस, मछली, अण्डा, गरम मसाला, लालमिर्च, इमली, कच्चा आम, या दोनों से बने आचार, चटनी इत्यादि से परहेज करना पड़ता है। आँवले का रस बिच्छू के डंक मारे हुए स्थान पर लगाने तथा पिलाने से दर्द ठीक होता है। धात रोग एवं श्वेत प्रदर में आँवला का चूर्ण एवं मिश्री को बराबर मात्रा में एक–एक चम्मच सुबह शाम ८–१० दिन तक खाने से लाभ होता है। छोटानागपुर के जनजातीय औषधि में यह एक महत्त्वपूर्ण एवं आसानी से पायी जाने वाली औषधि है।

अमरबेल

वैज्ञानिक नाम : कस्कयूटा रिफलेक्सा

अमरबेल का तना प्रायः मोटा, पीला और पत्ती रहित होता है। फूल सफेद और गुलाबी रंग के होते हैं। यह शाम में मीठी सुगंध देता है। यह घने जंगलों में पाया जाता है। इसका प्रभाव खासकर जी जीकस एकाशीय और आधा टोडा बेसिका जातियों पर है। पौधों को पीसकर उनका लेप सात दिन

तक दिन भर में एक बार करके पट्टी बांधी जाती है। यह एकसिर बीमारी में प्रयोग किया जाता है। इसके लेप का प्रयोग पशु के मरोड़ या मोच में भी लाभप्रद होता है।

अमरबेल को टुकड़ों में काटकर तेल में पकाकर कोयला बना लिया जाता है। कोयले को निकालकर पीस लिया जाता है और पुनः उसी तेल में मिलाकर सुबह–शाम हाथ–पैर में मालिश कर उतारा जाता है। इससे पोलियो बीमारी में फायदा होता है। अमरबेल के टुकड़े कर छः गुना पानी में उबाल कर एक चौथाई होने पर उतारा जाता है। छानकर सिर धोने से बालों को पोषण मिलता है।

अमरबेल को मुट्ठी में भरकर उसका रस निकालकर पानी वाले एक्जिमा में १५–२० दिनों तक लगाने से ठीक होता है। अमरबेल का काढ़ा बनाकर कुल्ला करने से मसूड़े का दर्द ठीक होता है।

आसन

वैज्ञानिक नाम : टरमीनेलिया टोमेनटोसा

आसन बड़ा पेड़ होता है। इसकी छाल राख के समान खुरदरी मोटी एवं भूरा रंग लिए होती है। इसके अच्छे विकास के लिए नर्म भूमि की घाटियां उपयुक्त हैं। इसके पत्ते आयताकार होते हैं। फूल और पंखुड़ी बड़े होते हैं। फल लंबे होते हैं।

औषधीय गुण

आसन वृक्ष के २–३ ताजे कोमल पत्ते का लेई जैसा बनाकर तीन बार एक दिन में दिया जाता है जिससे उल्टी तथा दस्त ठीक होता है। इसकी छाल का चूर्ण बनाकर गर्म पानी में मिलाया जाता है जिसमें सरसों तेल भी मिलाया जाता है। कम सुनने की समस्या में इस मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। इसकी छाल को जलाकर तिल तेल के साथ मिलाया जाता है जो खुजली के निदान में काम आता है।

अकवन/अकवंद

वैज्ञानिक नाम : केलोट्रोपिस गीगान्टीआ

यह एक मझोला पौधा है, पत्ते बड़े एवं अंडकार होते हैं। फूल लगभग

नीले रंग के होते हैं। इसका फल हरा एवं गोलाकार होता है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसके किसी भी हिस्सा को तोड़ने से दूध जैसा तरल पदार्थ निकलता है। इसके तने एवं शाखाएँ मुलायम होते हैं। इसका दूध आँख के लिए हानिकारक होता है। यह जनजातीय क्षेत्र में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके पत्ते को गर्म करके मवेशियों के फूले हुए पैरों में सेंकने से आराम होता है। इसकी जड़ की छाल हाथी–पांव रोग में लाभदायक होती है। इसकी जड़ एवं पत्ते को पीसकर/कूचकर गर्म किया जाता है एवं मांसपेशियों के दर्द में लगाया जाता है। जड़ की छाल पेचिस के लिए भी लाभकारी है। इसके रस का प्रयोग यदि पानी में किया जाता है तो मछलियाँ मर जाती है। इसके फूल का चूर्ण खांसी, दमा एवं अनपच को ठीक करने के काम में लाया जाता है।

अकवन का चूर्ण एक भाग तथा त्रिफला का चूर्ण तीन भाग मिलाकर दिन में दो बार, एक–एक चुटकी थोड़ा मधु या पुराने गुड़ के साथ देने से मासिक गड़बड़ी ठीक होती है। अकवन की जड़ के चूर्ण के साथ बड़ी दूधी की जड़ बराबर मात्रा में मिलाकर एक–एक चुटकी सुबह–शाम १५–२० दिन तक प्रयोग करने से पानी वाले एक्जिमा में फायदा होता है। अकवन की जड़ या चूर्ण, एक चुटकी, एक कप कंजी (खट्टा) पानी के साथ सुबह–शाम तीस दिनों तक देने से फाइलेरिएसिस में लाभप्रद होता है।

पागल कुत्ते के काटने पर अकवन का दूध कटे स्थान पर लगाने से आराम मिलता है, फिर वैद्य से सलाह लेनी चाहिए। संधिवात में अकवन के पत्ते में तेल देकर जोड़ों को सेंकने एवं पत्ता बांध देने से लाभ मिलता है। अकवन की सूखी टहनी लेकर एक ओर बीड़ी जैसा सुलगा देते हैं फिर एक–एक नाक के छिद्र बंद कर बारी–बारी से दोनों नाक छिद्रों से लंबा कस लेने से सिर दर्द ठीक होता है। अकवन का पीला पत्ता लिया जाता है उसे सरसों तेल में चुपड़ कर आग में सेकते हैं जो तेल गिरता है उसे एकत्र कर लेते हैं। सुबह और शाम पैरों के तलवे में मालिश करने से मिर्गी रोग ठीक होता है।

अरण्डी/अरंजी

वैज्ञानिक नाम : रीसीनस कोम्मूनिस

अरण्डी एक झाड़ीनुमा अथवा कभी–कभी वृक्ष के जैसा होता है। इसके

पत्ते, बड़े चौड़े एवं किनारों पर कटे होते हैं। फूल बड़े और गुच्छों में होते हैं। फल एक संपुटिका में होता है, जिस पर काँटे लगे होते हैं। इसके बीज लाल और बड़े होते हैं। अरण्डी का पौधा खेतों की मेड़ों पर और बागानों आदि में पाया जाता है। यह जंगल, गाँवों के आसपास तथा बेकार स्थानों में उगाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके बीज का तेल औषधि के रूप में प्रयोग होता है। इसके बीज विषैले होते हैं। अरण्डी के बीज के तेल को "अरण्डी का तेल" या "कास्टर ऑयल" कहते हैं, जो तीव्र रेचक होता है। अरण्डी का तेल का प्रयोग आँख में डालने की औषधियों में तथा त्वचा पर ठंडक पहुँचाने के लिए कुछ मलहम (मरहम) में किया जाता है। रजोधर्म के समय तथा गर्भवती स्त्रियों को इस तेल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अरण्डी का तेल गर्भनिरोध क्रीम या जेली बनाने के कार्य में लाया जाता है।

राफीन्द हांसदा, ग्राम–तिलवाद, प्रखण्ड–सुन्दर पहाड़ी, जिला–गोड्डा, ने साक्षात्कार के दौरान बतलाया कि उन्होंने स्वयं दाँत दर्द की अवस्था में अरण्डी के दातुन से मुँह धोने पर दाँत दर्द एवं दाँत का हिलना दोनों में लाभ का अनुभव किया।

पलामू जिला के गारु प्रखण्ड के वैद्य स्व. जयराम भगत के पुत्र लालदेव भगत वैद्य जो रूद्र ग्राम के रहने वाले हैं। इन्हें शरीर पर बड़ा–बड़ा घाव हो गया था। इन्होंने इसका इलाज बतलाया कि ज्ञापिया पौधा की जड़, अरण्डी की जड़ और सिन्द्रीप तीनों को मिलाकर चीलम में भरकर इसे जलाकर इसका धुआँ मुँह में खींचकर बाहर निकाला जाता है। यह क्रिया खाली पेट सुबह में एक ही बार करना चाहिए। धुआँ अधिक देर तक मुँह में रहने पर दाँत को हानि पहुँचाने का खतरा है। इस क्रिया से घाव में लाभ होता है। अरण्डी को ताजे कोमल पत्तों को पीसकर लगभग २–३ चाय की चम्मच में लेकर लगभग १०० ग्राम दही के साथ दिन में दो बार करके ५–७ दिन तक देने से पीलिया रोग में लाभ मिलता है।

अनंतमूल

वैज्ञानिक नाम : हेमीडेस्मस ईन्डिकस

यह एक बहुवर्षी आरोही पौधा है। इसकी मूल (जड़) कड़ी एवं सुगंधित होती है। तने मुलायम एवं पत्ते का आकर भिन्न–भिन्न होता है। पत्ते हल्के

हरे या पीले तथा सफेद दाग युक्त होते हैं। फूल अत्यंत छोटे, हरे एवं गुच्छों में होते हैं। पौधों के सभी भागों से सफेद दूध–सा रस निकलता है। यह पौधा समस्त भारत में मिलता है।

औषधीय गुण

अनंतमूल की जड़ों को सुखाकर औषधि के रूप में प्रयोग करते हैं। यह औषधि ज्वर, त्वचा रोग, भूख न लगना, श्वेत प्रदर तथा मूत्र रोगों में लाभदायक है। यह औषधि रक्त को शुद्ध करने के लिए तथा गठिया में बहुत अधिक उपयोगी है। अनंतमूल की पतली पत्तियों वाली किस्म के ताजे पत्ते को चबाने से षरीर में ताजगी आती है।

अनंतमूल की जड़ के साथ घर के ४० मकड़ों तथा अमलतास के पक्के फल का गुद्दा बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर मटर के बराबर गोली दिन में एक बार खाने से एवं मलने से बेचैनी ठीक होती है। रंगवाद बीमारी में अनंतमूल की जड़ तथा काटाभाजी की जड़ को गाय के घी में पका कर छान लेते हैं और दिन में तीन–चार बार चटाने तथा लगाने से ठीक होता है। अनंतमूल की जड़ के टुकड़े को अपने इष्ट देवता का नाम लेकर दोनों हाथों, दोनों पैरों पर एक जड़ बांधने से बच्चे के पोलियो में लाभ होता है।

आजवायन

वैज्ञानिक नाम : आर्टेमिसिया मारीटिमा

आजवायन बहुवर्षी सुगंधित पौधा है। इसकी शाखाएँ विभाजित, पत्ते लंबे, सफेद होते हैं। शाखाओं के निकले भाग वाले पत्ते पतले–पतले अनेक भाग में कटे होते हैं।

औषधीय गुण

आजवायन के पौधों की पत्तियों तथा पुष्प डोडियों को सुखाकर औषधि के रूप में प्रयोग करते हैं। ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में या वसंत ऋतु के प्रारंभ में अर्थात् जब पौधों पर पुष्प पूरी तरह पका हुआ नहीं होता है उस समय इसके पत्ते तथा पुष्प डोडियों को एकत्रित करते हैं। इस समय इनमें "सेंटोनिन" की मात्रा अधिक होती है। सेंटोनिन पर ही पौधे के औषधीय गुण निर्भर है।

सेंटोनिन, जो कृमियों का नाश करने के लिए प्रसिद्ध है, विशेषकर ऐडवर्म

तथा राउन्डवर्म पर उपयोगी है। सेंटोनिन के सेवन से कृमि बड़ी अंतड़ी में पहुँच जाते हैं। वहाँ से किसी रेचक पदार्थ की सहायता से मल के साथ निकल जाते हैं। यह औषधि ज्वर तथा जलोदर में उपयोगी है।

आम

वैज्ञानिक नाम : मांगीफेरा इण्डिका

आम एक सदाहरित वृक्ष है। इसके वृक्ष विशाल होते हैं। इसके पत्ते पतले एवं लंबे होते हैं। इसके फूल गुच्छे में रहते हैं जिन्हें मंजर कहा जाता है। आम का फल मीठा, गुद्देदार और रसदार होता है। साल में एक बार पत्तियों का झड़ जाना इसकी प्रमुख विशेषता है। इसका फूल (मंजर) लगभग फरवरी—मार्च में लगना शुरू होता है। यह जंगल, पहाड़, देहातों एवं शहरों में सभी जगह पाया जाता है। अध्ययन क्षेत्र सुन्दर पहाड़ी प्रखण्ड में यह काफी पाया जाता है।

औषधीय गुण

मीठे आम का गुद्दा, २५० ग्राम दही और आवश्यकतानुसार चीनी मिलाकर शर्बत बना लिया जाता है। एक गिलास रोजाना पीने से खून में बढ़ोत्तरी होती है। शरीर मोटा तंदुरूस्त और चेहरे का रंग खिलता है। संतोष पहाड़िया के अनुसार कच्चे आम को पकाकर शर्बत बनाकर पीने से लू से बचाव होता है। डॉ. विश्वनाथ पांडेय, सुन्दर पहाड़ी प्रखण्ड के चंदना गाँव के अनुसार आम के साथ रोटी खाने से रोटी स्वादिष्ट लगती है तथा भूख भी बढ़ती है। मंगल पहाड़िया के अनुसार आम के पत्ते छाया में सुखाकर जला लिये जाते हैं। बाद में उसका चूर्ण बनाकर रोजाना मंजन करने से मसूड़ों से खून निकलना बंद होता है तथा दाँत भी मजबूत होते हैं। आम की गुठली को पीसकर आधे गिलास पानी में घोलकर खाली पेट सुबह—शाम तीन—चार बार पीने से पेचिस रोग से छुटकारा मिलता है। आम की गुठली, बेंग साग और चूना को मिलाकर पीसा जाता है। आधा गिलास पानी में शर्बत बनाकर पीने से पेट दर्द ठीक होता है। आम की गुठली लेकर उसका गुद्दा निकाल कर पीस लिया जाता है। दो भागों में बांटकर एक भाग को पानी के साथ मिलाकर तथा दूसरे भाग को शरीर में मलकर उतारने से पागल कुत्ते का विष उतरता है। आम की गुठली के गुद्दे का चूर्ण बनाकर आधा चम्मच सुबह—शाम तीन से पाँच दिन तक खाने से अतिसार (डायरिया) ठीक होता है।

इमली

वैज्ञानिक नाम : टामारिन्डस इण्डिका

इमली का वृक्ष सदाहरित तथा काफी बड़ा होता है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं। नये एवं कोमल पत्ते हल्के रंग के होते हैं। फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। जिन पर लाल धारियाँ होती हैं। इसके फल सीधे या हँसुए के आकार के होते हैं। जो गुद्देदार एवं भूरे रंग के होते हैं। प्रायः इसके बीज कत्थई रंग के एवं चमकीले होते हैं।

यह वृक्ष प्रायः सभी जगहों पर पाया जाता है। सड़कों के किनारे, नगरों एवं उद्यानों में भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

इमली का गुद्दा खट्टा होता है जो औषधि में प्रयोग होता है। इसमें थोड़ा रेचक गुण है। इससे बना पेय ज्वर में लाभप्रद होता है। इस वृक्ष की छाल को पीसकर एक्जिमा एवं खुजली में तीन–चार दिनों तक लगाने से लाभ होता है। ऐसी जानकारी गारू प्रखण्ड के वैद्य श्री लालदेव भगत ने दी। इमली के बीज का छिलका हटाकर उसका चूर्ण चौथाई चम्मच मिश्री के साथ दिन में दो बार सात से दस दिन तक खिलाने से महिलाओं का श्वेत प्रदर ठीक होता है। इमली के कोमल पत्ते के चूर्ण में काला नमक मिलाकर खाने से अनपच में आराम होता है। इमली के कोमल पत्तों का चूर्ण मिश्री के साथ शर्बत बनाकर सुबह–शाम सात दिनों तक देने से गर्म मूत्र में लाभदायक होता है। डायरिया की स्थिति में इमली के पत्ते को सुखाकर बने चूर्ण को सेन्धा नमक के साथ एक गिलास पानी में मिलाकर दो चम्मच दिन में २–३ बार पाँच दिन तक पिलाने से ठीक होता है। इमली का पुराना गुद्दा या पत्ते पीसकर दिन में दो बार लेप करने से अंछर (अपथाएं) जिसमें श्लेष्मा झिल्ली की सतह पर छोटे सफेद वर्ण होते हैं, वह ठीक हो जाता है। इमली का गुद्दा पानी के साथ पीसकर पिलाने से शराब का असर उतर जाता है।

ईशरमूल/ईश्वरी

वैज्ञानिक नाम : अरीस टोलोचिया इण्डिका

ईशरमूल आरोही पौधा होता है। इसकी निचली शाखाएँ कड़ी व मोटी, किन्तु ऊपर वाली शाखाएँ पतली व मुलायम होती हैं। पत्ते का आकार एक

जैसा नहीं होता है। फूल छोटे केलई रंग के पत्तों के कक्ष में छोटे गुच्छों में होते हैं। फूलों के आगे का भाग गुलाबी रंग का होता है। यह मैदानी तथा तलहटी प्रदेशों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

दाँत के दर्द को ठीक करने के लिए इसकी जड़ को चबाकर रस को लार के साथ मिलाया जाता है। इसे दर्द वाले स्थान पर रखने से दर्द ठीक हो जाता है। इसकी जड़ एवं शाखाएँ औषधि के रूप में काम आती हैं। यह नियमित मात्रा में सेवन करने से पाचन क्रिया को बढ़ाती है तथा मासिक धर्म ठीक करती है। रक्तचाप एवं ज्वर में निर्धारित मात्रा में लेने पर लाभ होता है। अधिक मात्रा में लेने से वमन, गर्भपात एवं अन्य विकार उत्पन्न कर सकती है।

श्री रमेश चंद्र, उम्र ३५ वर्ष, गाँव–अंगनवाली, प्रखण्ड–सुन्दरपहाड़ी जिला–गोड्डा ने जानकारी दी है कि सर्प के डंसने पर ईश्वर मूल को प्रतिजैविक के रूप में लेने से लाभ होता है।

बच्चों के सर्दी में इसके पत्ते (सूखे या ताजे) को मधु के साथ पीसकर चटाने से ठीक होता है। ईश्वरी मूल की जड़ तथा सर्पगंधा की जड़ बराबर–बराबर मात्रा में चूर्ण मिलाकर एक दो चुटकी मधु के साथ ६–७ दिनों तक देने से अधकपारी में लाभदायक होता है।

ईशर मूल की जड़ एक–दो चुटकी १५–२० दिनों तक मधु के साथ खिलाने से उच्च रक्त चाप ठीक हो जाता है।

इलायची

वैज्ञानिक नाम : एलेट्टारिया कार्डामोमुम

इलायची के पौधे के प्रकन्द मोटे और शाखित होते हैं। तने सीधे होते हैं। पत्ते बड़े, लंबे और संकरे होते हैं। जिस शाखा पर फूल आते हैं वह पौधे के आधार के निकट निकल कर भूमि पर ही फैल जाती है। फूल लंबे, सफेद या केलई रंग होते हैं। फल लंबा, अंडाकार, तिकोना होता है। बीज भूरे या काले रंग के होते हैं।

औषधीय गुण

इलायची के बीज औषधि में काम आते हैं। यह पाचक की तरह कार्य करता है। यह औषधि रेचक पदार्थों के साथ भी दी जाती है। इलायची को

लौंग, अदरख व जीरा के साथ पीसकर खाने से अनपच दूर होती है। टेटनस में इलायची (एक छोटी) और लौंग का दाना (३) सरसों तेल में पीसकर गला तथा कपाल में मलने से ठीक होता है।

ईसबगोल/इसफगोल

वैज्ञानिक नाम : प्लांटोगो ओवाटा

ईसबगोल पौधे का तना छोटा होता है और पूरा पौधा रोमयुक्त होता है। पत्ते लंबे एवं संकरे होते हैं। फूल छोटे–छोटे होते हैं। बीज का दोनों सिरा (शिरा) नुकीला होता है।

औषधीय गुण

ईसबगोल के बीज औषधि के रूप में काम आता है। ईसबगोल पुरानी पेचिश में, कब्ज में लाभप्रद सिद्ध होता है। उपयोग में लाने के पहले बीज को पानी या दूध में भिंगा दिया जाता है जिससे वह अच्छी तरह फूल जाता है और अंतड़ियों में शीघ्र ही घुल जाता है। यदि सूखे बीज अंतड़ियों में बहुत समय तक रह जाएं तो पेट में जलन पैदा करते हैं। इसके बीज का मुख्य गुण यह है कि यह लसलसा एवं स्वादरहित होता है। यह डायरिया में भी लाभप्रद होता है।

उड़द

वैज्ञानिक नाम : फेसीओलस मुंगा

यह एक प्रकार के लत्तर/लरंग के रूप में होता है। इसका पत्ता हरा और फूल का रंग पीला होता है। इसे लोग खेतों में लगाते हैं।

औषधीय गुण

उड़द को सौंफ के साथ काढ़ा बनाकर पीने से लकवा कम होता है।

उड़हुल

वैज्ञानिक नाम : हिबिसकस रोसा साइनेनसिस

यह सुशोभित झाड़ी के रूप में होता है। इसके पत्ते साधारणतः हरा, अण्डाकार, किनारे पर दांतेदार, बिना रोम का, नुकीला होता है।

यह समस्त छोटानागपुर के उद्यानों में पाया जाता हैं। जिसके फूल अति आकर्षक होते हैं। जो लाल, पीले, सफेद एवं अन्य रंगों के होते हैं।

औषधीय गुण

इसकी कली का लेई बनाकर प्रतिदिन एक बार खाली पेट में प्रयोग करने से दुर्बलता एवं नपुंसकता दूर हो जाती है। इसकी छाल को पीसकर पिलाने से दर्द मूत्र अवरोधक में आराम मिलता है। उड़हुल फूल को बोयाम में गुड़ के साथ मिलाकर रखा जाता है और बोयाम भरकर बंद कर दिया जाता है। जिसे धूप दिखाया जाता है। फिर उसे दवा के रूप में सुबह–शाम खाने में प्रयोग किया जाता है जो महिलाओं की मासिक गड़बड़ी में लाभप्रद औषधि के रूप में कार्य करता है। इसके फूलों को चबाने से मुँह के छालों में आराम मिलता है। खाँसी में इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर देने से लाभ होता है।

कचनार

वैज्ञानिक नाम : वाउहिनिया वरीगाटा

कचनार मध्यम आकार का रेशेदार पत्तियों वाला वृक्ष है। फूल बड़े, सफेद या गुलाबी या बैंगनी रंग का होता है। यह झारखंड क्षेत्र के सभी जिलों में सूखी चट्टानों आदि स्थानों पर सामान्य रूप में पाया जाता है।

औषधीय गुण

अनपच (अजीर्ण) और पेट फूलने में कचनार की जड़ का काढ़ा बनाकर रोगी को दिया जाता है। इसका फूल चीनी के साथ देने पर रेचक या मल को मुलायम करने वाली औषधि के रूप में कार्य करता है। इसकी शुष्क (सूखी) कली पेचिश एवं बवासीर में काम आती है। जड़, छाल और फूल तीनों को खरल में महीन बुक कर चूर्ण बनाया जाता है जिसे चावल का पानी (माड़) में मिलाकर फोड़े पर लगाने से उसे पकाकर पीव निकालने में मदद करता है।

करंज

वैज्ञानिक नाम : पोनगामिया पिनाटा

करंज का वृक्ष मझोले आकार का होता है। डंठल के दोनों ओर पत्ते पाये जाते हैं। फूल सफेद, हल्के जामुनी रंग के होते हैं। फल सफेद एवं सुगंधित होते हैं, लेकिन आधार में गहरे भूरे रंग के होते हैं। इसकी बीज द्विबीजपत्री

होते हैं। यह जनजातीय क्षेत्रों के जंगलों, गाँवों विशेषकर सड़कों के किनारे, नदी–नालों के किनारे भी पाया जाता है। करंज बीज से प्राप्त तेल का प्रयोग औषधीय निर्माण में किया जाता है।

औषधीय गुण

इसका (करंज तेल) तेल चर्म रोग में काफी उपयोगी है। जनजातीय समुदाय इस तेल का प्रयोग घाव एवं फुन्सी ठीक करने में करते हैं। इसे मुर्गे के पंख के सहारे ३–४ दिनों तक लगाने से लाभ होता है। इसका दातुन दाँतों एवं मसूड़ों के लिए लाभप्रद होता है।

अड़की प्रखण्ड के लापुंगहातु ग्राम के वैद्य ने जानकारी दी कि करंज का तेल, टेगरा मछली, कंडिल का पत्ता और गंधक को मिलाकर आग पर खौला कर मलहम बनाया जाता है। घाव–एक्जिमा वाली जगह को तांबे के सिक्के से रगड़ कर साफ किया जाता है तब मलहम लगाने से घाव, दिनाई, खुजली बहुत जल्द ही समाप्त हो जाता है। इसकी छाल खूनी बवासीर में उपयोगी है। इसकी जड़ का रस को नारियल, दूध और नींबू में मिलाकर प्रयोग करने से सुजाक ठीक हो जाता है।

फाइलेरियेसिस में करंज के पत्तों का रस एक–दो चम्मच सुबह खाली पेट में तीस दिनों तक देने से ठीक हो जाता है। करंज के तेल एवं चकोड़ के पत्ते से पकाकर तेल छानकर खुजली में लगाने से लाभ होता है। इसके तेल में गंधक और थोड़ा तूतिया मिलाकर लगाने से खाज या खसुआ में लाभ होता है।

सफेद दाग (ल्यूकोडरमा) बीमारी में ब्रह्मणी, सिन्दवार, ईशमूल की जड़ तेल में मिलाकर मलहम बनाकर लगाने से ठीक होता है।

कुसूम

वैज्ञानिक नाम : सेचलीचेरा ओलेओसा

कुसूम विशाल पेड़ है। इसकी छाल का बाहरी रंग भूरा होता है। इसकी डाली टेडी–मेढ़ी होती है। इसकी छाल के अंदर वाला भाग लाल रंग का होता है। इसका फूल पीलापन के साथ हल्का हरा रंग का होता है। इसके पेड़ में केवल पुरुष फूल लगते हैं। जिसके कारण नहीं फलता है। यह झारखंड के सभी क्षेत्र में पाया जाता है।

उपयोग – इसकी छाल दस्त रोकनेवाली दवा के काम में आती है। खुजली को रगड़ कर साफ कर इसका तेल लगाने पर लाभ होता है। इसके बीज का चूर्ण (पाउडर) को जानवरों के घाव में कीड़ा मारने के लिए उपयोगी है। इसका तेल बालों की वृद्धि हेतु उपयोगी है। खारहा घास के काले पत्ते को हाथ से मलकर पानी को छान लेते हैं। तेल को उबाला जाता है। जब उबलना शुरू होता है तो दवा पानी में मिलायी जाती है। जब उबलते–उबलते पानी समाप्त हो जाता है तो छानकर रख लिया जाता है। तेल और पानी के मिश्रण से बुलबुले निकलते हैं। बुलबुले समाप्त होने या तेल की गन्ध से भी मालूम किया जा सकता है कि तेल तैयार हो गया है। जिसे बालों में लगाने से बाल को पोषण मिलता है।

कुनैन

वैज्ञानिक नाम : सीकोना ओफीसीनेलिस

भारत में उगाये जाने वाले कुनैन के पौधे बड़े मझोले वृक्ष होते हैं। इसकी प्रचलित जाति सीकोनों लेजेथरिआना का पौधा झाड़ी की तरह फैला रहता है। कुनैन वृक्ष की छाल को सुखाकर औषधि में प्रयोग किया जाता है। इसके उपयोगी तत्वों में कुनैन एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। यह ज्वर नाशक, विशेषकर मलेरिया में लाभदायक है। यह कुछ प्रकार के बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न बीमारियों को दूर करने में सहायक है। इससे बनी औषधीयाँ निमोनिया अमीबा–पेचिस और नेत्र रोगों में लाभप्रद होती हैं। साथ ही इससे बने मलहम, तेल, घोल गठिया के दर्द पर लगाने से आराम मिलता है। कुनैन की अधिक मात्रा में सेवन करने से मिचली और चक्कर आ जाते हैं और कभी–कभी नेत्र एवं कान के नष्ट होने का भय रहता है। गर्भवती स्त्रियों तथा हृदय रोगियों को कुनैन से बनी दवा नहीं दी जाती है। क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान पाया गया है कि गोड्डा जिला के सुन्दर पहाड़ी प्रखण्ड के अंगवाली एवं चंदना गाँव में कुनैन का पौधा नर्सरी (पौधशाला) में लगाया गया है। जड़ी–बूटी की देख–भाल एवं लगाने का कार्य पहाड़िया सेवा मंडल संस्था के द्वारा होता है। इसके संयुक्त सचिव श्री रमेश चन्द्र के मार्ग दर्शन में छोटा नर्सरी की देख–भाल होती है। बड़ा सिन्दरी गाँव के श्री सुभाष मांडी ने बताया कि पीलिया की बीमारी में कुनैन की जड़ को पीसकर प्रयोग करने से लाभ होता है।

कामराज

वैज्ञानिक नाम : सीडा एक्यूटा

कामराज एक वार्षिक झाड़ीय पौधा है। इसके पत्ते बड़े, चौड़े और रोयेंदार होते हैं। तने मुलायम एवं रोम युक्त होते हैं। इसके कंद सालों भर मिलते है, इस पौधे की जड़ तथा कंद कई रोगों में उपयोगी सिद्ध होता है। झारखंड में बंजर भूमि में पाया जाता है।

औषधीय गुण

कामराज की जड़ को लेई बनाकर उसे सरसों तेल में मिलाकर गर्म किया जाता है। इस औषधि का प्रयोग कमर दर्द ठीक करने में किया जाता है।

गारु प्रखण्ड के रूद गाँव के वैद्य श्री लालदेव भगत, इसके कन्द का प्रयोग स्वप्नदोष के मरीजों के इलाज हेतु करते हैं। इस कन्द को लगातार तीन–चार दिनों तक खाने से बीमारी ठीक हो जाती है।

कदम

वैज्ञानिक नाम : एन्थोंसिफेलिस कटेंबा

कदम का वृक्ष सीधा, सदाहरित तथा बड़ा होता है। इसकी शाखाओं से भी शाखाएँ निकली होती हैं। पत्ते अण्डाकार होते हैं। फूल छोटे, नारंगी रंग के होते हैं। यह अधिकतर सिंहभूम में पाया जाता है, विशेषकर सारण्डा क्षेत्र के थोलकोबाद में इसे लगाया गया है, किन्तु शुष्क स्थान होने के कारण उचित वृद्धि (विकास) नहीं हो सकी।

औषधीय गुण

इसकी छाल को ज्वर कम करने, साँप काटने की समस्याओं में औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके पत्ते का काढ़ा एफेथे एवं स्टोमे टम्टीस की स्थिति में गरारा (कुल्ला) करने से लाभ होता है।

कुटमा

वैज्ञानिक नाम : सोलेनम इण्डिकम

यह पौधा मध्यम आकार का होता है। शाखाओं पर हुकनुमा कांटा होता है। पत्ते हरे और काँटे लिए होते हैं। फूल सफेद एवं हल्का पीला होता है।

फल एवं बीज गुच्छों में पाए जाते हैं। यह झारखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में ज्यादा पाया जाता है।

औषधीय गुण

कच्चे हरे फल को पीसकर दाद पर लगाने से लाभप्रद होता है। यह दमा, त्वचा रोग, मूत्र संबंधी रोग, अत्यधिक प्यास में लाभप्रद होता है। पौधे का डंठल का काढ़ा बनाकर पीने से पेचिश एवं उदर रोग में लाभ होता है। इसके फल को काटकर भुजिया बनाकर खाने से गैस्टिक में लाभ होता है।

कालाबूटी

यह जंगल में उगने वाला बरसाती हरा पौधा है। यह देखने में मकई के पौधे जैसा तीन–चार पत्तों वाला होता है। इसकी जड़ कन्द के रूप में गुच्छेदार होती है। कन्द भूरा होता है। गर्मी के दिन में इसका कंदा ही जमीन के अंदर जीवित रहता है। यह पौधा गारु प्रखण्ड के रूद् ग्राम के स्थानीय पहाड़ एवं जंगल में नमी वाले स्थानों पर पाया जाता है। इसके अलावा झारखंड के पहाड़ों एवं जंगलों में अल्प मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

कालाबूटी एवं पाताल बूटी के कन्द के साथ तेजराज, भोजराज और कामराज की जड़ को मिलाकर पीसा जाता है। तीन महीने तक लगातार सुबह खाली पेट में इस मिश्रण को खाने से टी.बी. रोग में लाभदायक होता है।

निषेध : किसी भी प्रकार का नशा नहीं करना चाहिए।

केला

वैज्ञानिक नाम : मूसा पाराडिसीआका

केला बहुत पुराना वृक्ष है जो कि झाड़ियों में लंबा है। इसके पत्ते बड़े, लंबे, अण्डाकार और हरे रंग के होते हैं। इसके फल हरे और पकने पर पीले होते हैं। जो गुच्छों में लगते हैं। गाँवों में कुआँ के आसपास पाया जाता है।

औषधीय गुण

अड़की प्रखण्ड के वैद्य ने हैजा बीमारी के इलाज के संबंध में बताया कि केला पेड़ का रस, खैर, आम का गुठली, चूड़ा पानी, मिश्री, गोलकी,

पिण्डारकोम पीसकर खाने से लाभ होता है। डायरिया/अतिसार में कच्चा केला के फल का चूर्ण आधा चाय चम्मच सुबह–शाम ३–५ दिन तक खिलाने से ठीक होता है। गर्भावस्था में अतिसार/डायरिया बीमारी में केले के कच्चा फल के चूर्ण को चौथाई से आधी चाय चम्मच दिन में तीन बार पानी के साथ पीने से ठीक होता है। मुँह के छाले होने की स्थिति में गाय के दही के साथ केला एक सप्ताह तक इस्तेमाल करने से फायदा करता है। यदि नाक से खून निकलता है तो एक पका हुआ केला शक्कर और दूध मिलाकर आठ दिन तक खाने से लाभ होता है।

करैला

वैज्ञानिक नाम : मोमोरडीका चीरेंसिया

यह लत्तर वाला झाड़ी, एक वर्षीय हरा पौधा होता है। इसके तने कमजोर होते हैं। पत्ते हरे एवं किनारे कटे होते हैं। फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। फल हरे व पकने के बाद पीले हो जाते हैं जिसमें बीज अधिक संख्या में पाए जाते हैं।

यह प्रायः झारखंड के सभी क्षेत्रों में लगाए जाते हैं।

औषधीय गुण

इसके पत्ते को तोड़कर उबाल देते हैं और इस पानी को पीया जाता है जो रक्तचाप को कम करने में लाभदायक होता है। रक्त शुद्धि के लिए उसके कच्चे फल के रस को पीया जाता है। मधुमेह की बीमारी में भी यह लाभदायक होता है। बिच्छु दंश में इसकी जड़ को पीसकर गोमूत्र के साथ मिलाकर काटे हुए स्थान पर लगाने से ठीक होता है।

कौड़ी

यह छोटा पौधा है। इसके आकार–प्रकार गेहूँ के पौधे जैसे होते हैं। इसके फल छोटे एवं सफेद भूरे रंग के होते हैं। इसका फल पकने के बाद कठोर एवं चिकना हो जाता है। यह सिंहभूम एवं झारखंड के अन्य भागों में थोड़ी मात्रा में पाया जाता है। वर्षा ऋतु के समय गाँव में घर के आसपास वाली जगहों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसका प्रयोग कान दर्द में किया जाता है यदि किसी व्यक्ति के कान से पीव निकल रहा तो तो कौड़ी के बीज को जलाकर चूर्ण बनाकर कान में डाला जाता है। इसे २–३ बार एक सप्ताह तक देने से ठीक होता है।

काला कीड़ी भौरी कीड़ा

यह कीड़ा काला, छोटा और हमेशा पानी में पाया जाता है। जो हर समय घूमता रहता है। इसके पंख भी काले रंग के होते हैं। यह झरनों, नदियों, तालाबों या कुओं के पानी में पाया जाता है।

औषधीय गुण

यह कीड़ा मिर्गी बीमारी में लाभदायक होता है। इस कीड़ा को पकड़कर गुड़ के साथ खिलाने से मिर्गी बीमारी से छुटकारा मिलता है। श्मशान की रोटी (जो क्रिया–कर्म के संस्कार के समय सेंकी गई हो) को चुपके से लाकर मिर्गी बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को खिलाने से भी बीमारी ठीक हो जाती है। ऐसा लोगों का विश्वास है। यह जानकारी गारु प्रखण्ड में साक्षात्कार के समय जनजातीय वैद्य से प्राप्त हुई।

कंहट

यह एक जंगली जानवर है। जिसके शरीर में मछली के चोएँ के जैसा छिलका पाया जाता है। जो सफेद गोलाकार एवं मोटा होता है। यह गारु प्रखण्ड के पहाड़ों में अधिकतर पाया जाता है और गुफाओं में रहता है।

औषधीय गुण

इसका चोंया (छिलका) अंगूठी बनाकर पहना जाता है। इससे मिर्गी बीमारी ठीक होती हैं। ऐसा लोगों के बीच विश्वास है। मिर्गी की बीमारी को दूर करने के लिए मृग–कस्तूरी भी लाभप्रद होता है। ऐसा अंधविश्वास है कि जो मिर्गी से पीड़ित होता है उसे खपड़े वाले मकान से खपड़ा हटाकर दरवाजे से तीन बार पार करते हैं और प्रत्येक बार गर्म सोने से सिर (ललाट) पर दागा जाता है जिससे मिर्गी ठीक हो जाती है। यह अंधविश्वास गारु प्रखण्ड में पाया गया।

केंचुआ

वैज्ञानिक नाम : फेरीटीमा पोस्टुमा

खेत में पाए जानेवाला छोटा केंचुआ मिर्गी बीमारी में लाभदायक होता है। केंचुआ को पीसकर गुड़ के साथ मिलाकर मिर्गी से पीड़ित व्यक्ति को खिलाने से फायदा होता है। इसमें गंध होने के कारण खाने में कठिनाई होती है।

कसगो

यह लता है। इसका पत्ता महीन एवं पतला होता है। लता कांटेदार होती है। यह झारखंड के पहाड़ों एवं जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

यह बुखार में लाभदायक होता है। इसकी जड़ी को पीसकर बुखार के समय तलवे में मालिश करने से कुछ ही देर में बुखार ठीक हो जाता है।

कनेल

वैज्ञानिक नाम : थभेसिया पेरुभियाना

इसका पौधा मध्यम आकार का होता है। इसके पत्ते हरे, लंबे और दोनों किनारे कटे–कटे होते हैं। तने शाखाओं में बंटे होते हैं। बीज काले होते हैं। यह झारखंड में प्रायः सभी क्षेत्रों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके पत्ते को पीसकर तेल में मारकर दवा तैयार किया जाता है जिसका प्रयोग चर्मरोग, एक्जिमा आदि में करने से आराम मिलता है।

कुलिंजन

वैज्ञानिक नाम : अलपीनीया गलंगा

मध्यम आकार का बहुवर्षीय पौधा है। इसके पौधे में अति सुगंधित गुच्छे वाले फूल होते हैं। पत्ता हरा, चिकनारहित होता है। इसका कन्द दवा के रूप में काम आता हैं। यह अल्पमात्रा में झारखंड के घने जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके कन्द को उखाड़कर धोकर पीसकर तेल निकाला जाता है जो किसी भी प्रकार के शरीर–दर्द में लाभदायक होता है।

कुटुम

वैज्ञानिक नाम : कोक्सीनिया कोर्डिफोलिया

यह शाकीय पौधा है। इसका पत्ता हरा, चिकना तथा किनारा कटा होता है। यह बिना शाखा वाला पौधा है। तना कमजोर एवं मुलायम होता है। जड़ अल्प मात्रा में होती है। फूल हल्के पीले रंग का तथा फल हल्के एवं लाल तथा बाद में गहरे लाल रंग का होता है। यह पूरे झारखंड में बहुतायत में पाया जाता है जिसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

इसके फल को तोड़कर सुखाया जाता है। केवल ऊपरी छिलका का चूर्ण बनाकर नमक के साथ १–२ चम्मच खाने से पेट दर्द तथा कब्जियत में लाभदायक होता है। गैस्टिक बीमारी के लिए इसके फल के छिलके को माड़ के साथ उबालकर दाल जैसा बनाया जाता है, जिसे भोजन के साथ खाने से लाभ होता है।

काली

काली का वृक्ष छोटा होता है। इसका पत्ता का रंग हरा, छोटा एवं अण्डाकार होता है। इसका फूल छोटा एवं गुलाबी रंग का होता है। फल छोटा, एवं ऊपरी हिस्सा घुमावदार होता है। फल सूखने के बाद फट जाता है। यह झारखंड के जंगलों, पहाड़ों में बहुतायत में पाया जाता है।

औषधीय गुण

स्त्रियों के श्वेत प्रदर में इसकी छाल को पीसकर गोली बनाकर दिन में तीन गोली लगातार १५–२० दिनों तक खाने से ठीक होता है।

कोचला/कुचला

वैज्ञानिक नाम : स्ट्राइकनस नक्स भौमिका

कोचला मध्यम आकार का पेड़ है। इसके तना एवं छोटी शाखएँ भी कठोर होते हैं। इसका फल छोटा एवं गोलाकार हरा रंग का होता है।

पकने पर इसका फल पीला रंग का हो जाता है। एक फल के अंदर गोल एवं चपटा बीज ५–६ की संख्या में पाया जाता है। कोचला झारखंड के

गुमला जिले के पहाड़ों, मैदानों एवं पूर्वी सिंहभूम जिला के जंगलों एवं मैदानी इलाके में अल्प मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

बच्चों के नजर लगने, टोटके एवं बच्चों की मिट्टी खाने की आदत में लाभदायक है। कोचला के बीज एक या तीन की संख्या में बच्चों (छोटे बच्चों) के कमर में बाँधने से किसी भी प्रकार के नजर एवं टोटके से रक्षा मिलती है। यदि कोई छोटा बच्चा मिट्टी खाता है तो उसकी कमर में कोचला बीज बांधने से एक सप्ताह के अंदर बच्चा मिट्टी खाना छोड़ देता है। उपरोक्त जानकारी गुमला जिला के बिशुनपुर प्रखण्ड के ग्राम नारमा के वैद्य श्री माँगला उराँव ने दी। यहाँ की जनजातियाँ उराँव, बिरहोर, खड़िया आदि के बीच ऐसा विश्वास है।

कौंच

वैज्ञानिक नाम : मूकूना पुरीटा

कौंच यह एक बरसाती लता है। इसकी लताएँ हरे रंग की तथा मध्यम आकार की होती हैं। इसके फूल गुच्छे में बैंगनी रंग के होते हैं। कौंच का फल आकार में बड़े सेम के जैसे– हरे रंग के तथा रेशेदार होते हैं। फल परिपक्व होने पर हल्का–पीला एवं लाल रंग का होता है। इसका रोवाँ यदि आदमी के किसी भी अंग में लग जाय तो बहुत खुजली होने लगती है। ये लताएँ बरसात के मौसम में उगती हैं तथा गर्मी में मुरझा जाती हैं।

औषधीय गुण

कौंच के बीज को पीसकर फोड़ा पर लगाने से फोड़ा बैठ जाता है। यदि पके हुए फोड़े में लगाया जाय तो फोड़े को फाड़कर सम्पूर्ण पीव को बाहर निकाल देता है और फोड़ा शीघ्र सूखने लगता है। अतः कौंच फोड़े में बहुत लाभदायक होता है।

उपरोक्त जानकारी बिशुनपुर प्रखण्ड के ग्राम नारमा के वैद्य श्री माँगला उराँव से प्राप्त हुई। आलकुशी (कौंच) की जड़ को पीसकर मटर के दाने के आकार की गोली बनाकर दिन में तीन बार करके दस दिन तक खाने से मलेरिया बुखार ठीक हो जाता है। महिलाओं में यदि योनि से पानी बहने एवं दुर्गन्ध आने की शिकायत होती है, तो ऐसी अवस्था में आलकुशी (कौंच) की जड़ का काढ़ा बनाकर योनि को धोने से पानी बहना एवं दुर्गन्ध आना ठीक हो जाता है।

करीर

यह पौधा है। जगह विशेष पर पौधा छोटा–बड़ा होता है। नम एवं ठण्डी जगहों में इस पौधे की ऊँचाई अधिक होती है। इसके पत्ते एवं तना हरे रंग के होते हैं। इसके फूल गुलाबी रंग के समूह में लगते हैं। इसका फल छोटा एवं हरे रंग का गोलाकार होता है। इसका फल पकने पर लाल रंग का होता है। करीर झारखंड के बिशुनपुर प्रखण्ड के स्थानीय पहाड़ों एवं जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

करीर आँखों के लिए लाभदायक है। इसका साग सप्ताह में एक–दो दिन खाते रहने से आँख में किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती है।

कोंहड़ा

वानस्पतिक नाम : कुकुरबीटा मोसकाटा

कोंहड़ा एक प्रकार की लत्तर है जिसको साग–सब्जी के रूप में प्रयोग करते हैं। प्रत्येक गाँठ पर दूसरी शाखा निकलती है। शाखा से ही बड़ा–बड़ा पत्ता जुटा हुआ होता है। इसका रंग हरा होता है। इसके पत्ते डंठल, शाखा आदि में बहुत छोटे–छोटे काँटेदार रोवें होते हैं। इसका फल कच्चे में हरा रंग का तथा पकने पर पीला रंग का हो जाता है।

इसे लोग सब्जी खाने के ख्याल से पैदा करते हैं। गाँव में घर के बारी में इसका पौधा पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके कोमल व नए पत्ते को सब्जी बना कर खाने से गैस्टिक की शिकायत दूर हो जाती है।

करम

वैज्ञानिक नाम : एडिना कोरडीफोलिया

करम बड़े वृक्ष के रूप में होता है। इसके पत्ते हृदय के आकार के होते हैं। फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। इसके पत्ते इतने घने होते हैं कि वृक्ष मुकुट का आकार जैसा बन जाता है। यह शाखाओं में बंटा होता है। यह सम्पूर्ण झारखण्ड में पाया जाता है। यह प्रायः जंगलों, जनजातीय गाँवों एवं

शहरों में भी पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसकी छाल की बनी लेई त्वचा पर बने घाव के निशान को समाप्त करने के लिए एक बार प्रतिदिन १५ दिनों तक खाली पेट में दिये जाती है। गारु प्रखण्ड के वैद्य के अनुसार बुखार की अवस्था में इसकी छाल को पीसकर कपड़े से छान लिया जाता है और मरीज को खाली पेट में देने से (पिलाने से) लाभ होता है। इसके रस का प्रयोग गर्भ निरोधक का काम करता है। इसके पत्ते में सरसों तेल लगाकर आग में सेंककर जले स्थान पर सटाने से वह भाग जल्द ही बैठकर ठीक होता है।

खैर/कत्था

वैज्ञानिक नाम : एकेसिया केटेचु

खैर काली छाल युक्त पौधा है। इसकी शाखाएँ कमजोर एवं उन पर हुक की तरह काँटे लगे होते हैं। फूल छोटे एवं हल्के पीले या सफेद रंग के होते हैं। यह पलामू जिला में ज्यादा पाया जाता है।

औषधीय गुण

जड़ से बनी लेई को गठिया बीमारी में जोड़ पर सात दिनों तक प्रयोग करने से लाभ होता है। इसका निचोड़, जिसे कत्था कहते हैं, का प्रयोग बुखार एवं अन्य बीमारियों में अत्यधिक रक्तश्राव रोकने में किया जाता है। यह विशेषकर अतिसार (डायरिया) में लाभप्रद है। इसका चूर्ण दाँत दर्द में आराम पहुँचाता है।

खैनी/तम्बाकू

वैज्ञानिक नाम – निकोटियाना टेबेकम

खैनी का पौधा छोटा होता है। पत्ता देखने में हरा, लेकिन सूखने पर भूरा हो जाता है। सूखा पत्ता ही खैनी के रूप में प्रयोग होता है। यह समस्त झारखण्ड में पाया जाता है।

औषधीय गुण

पलामू जिले के गारू प्रखण्ड में अध्ययन के क्रम में स्थानीय वैद्य से जानकारी मिली कि खैनी का प्रयोग औषधि के रूप में घाव एवं मासा को

ठीक करने में किया जाता है। खैनी के डंठल को जलाकर उसे चूना के साथ मिलाकर घोल बनाया जाता है। फिर खैनी और चूना को करंज तेल में मिलाकर घोल बनाया जाता है जो किसी प्रकार के घाव पर लगाने से ठीक हो जाता है।

अण्डवृद्धि/एकसिरा/पोथा बढ़ना बीमारी में तम्बाकू के पत्ते को पानी में मिलाकर पत्ते को फैला कर लंगोटी के सहारे जोर से कसा जाता है जिससे लाभ होता है। खाने वाले तम्बाकू की डंठी जलाकर उसकी राख नारियल तेल में मिलाकर खाज/खसुआ में देने से लाभ होता है।

खीरा

वैज्ञानिक नाम : कुकूमिस सेटीभस

खीरा का पौधा लत्तर के रूप में होता है। जो प्रायः इस क्षेत्र के सभी जगहों पर पाया जाता है। इसके पत्ते हरे, छोटे एवं रोमयुक्त होते है। इसके फूल पीले होते हैं।

औषधीय गुण

हैजे से पीड़ित रोगी (मरीज) के लिए खीरा बहुत ही लाभदायक है। पुराने खीरे के बीजों को महीन पीसकर हैजे से पीड़ित व्यक्ति को पिलाने पर वह ठीक हो जाता है। परहिया जनजाति में इसका प्रयोग उपचार के रूप में किया जाता है। पेट में पथरी होने की स्थिति में खीरे का ताजा पानी आधा –आधा कप सुबह शाम १५–२० दिनों तक पिलाने से पेट की पथरी ठीक हो जाती है।

खपरा साग/पुनर्नवा/विषखोपड़ा

वैज्ञानिक नाम : ट्रिआंथेमा पोरटुलाकासट्रम

यह भूमि पर फैलने वाला कमजोर पौधा होता है। इसकी शाखाएँ विभाजित होकर दूर–दूर तक फैल जाती हैं। पत्ते शीर्ष (ऊपर) अधिक चौड़े होते हैं। फूल अत्यन्त छोटे होते हैं। बीज काले रंग के होते हैं। यह झारखंड के सभी नमी रेतीले स्थानों में पाए जाते हैं। बरसात के दिनों में गाँव में घर के आसपास, खेतों आदि में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

इसके पत्ते औषधि के रूप में काम आते हैं। यह मूत्र विरेचक, जलोदर में उपयोगी है। जिगर या गुर्दे के विकारों के कारण यदि शरीर फूल जाता है तो उसमें भी यह लाभप्रद होता हैं। यह गर्भाशय को संकुचित करता है।

काला ज्वर में खपरा साग की जड़ के साथ चरईगोड़वा का छाल बराबर मात्रा में मिलाकर कूटते हैं और उसे एक ढक्कन वाले बर्तन में रखते हैं। सामग्री का चार गुणा पानी लेकर ढक्कन बन्द बर्तन में उबालते हैं। पूरा उबाल शुरू होने के समय से १० मिनट तक पानी उबलने दें। फिर इस पानी को तुरंत दूसरे बर्तन में रखकर ढक्कन बन्द करते हैं। जब ठंडा हो जाता है तो छानकर पानी बोतल में रखा जाता है। छाल के वजन का १५–२० गुणा पानी में यह तैयार किया जाता है। आधा कप सुबह, दोपहर और शाम में खाने के आधा घंटा पूर्व देने से लाभ होता है।

गर्भावस्था में हाथ–पैर सूजन में खपरा साग को पानी में घोलकर मिश्री के साथ दिन में दो बार देने से ठीक होता है।

खेसारी

वानस्पतिक नाम : लेथाइरस एफाका

खेसारी का पौधा/लता छोटा होता है। इसकी लम्बाई एक फीट तक होती है। इसका पत्ता छोटा एवं हल्के हरे रंग का होता है। इसका फूल आसमानी रंग का होता है। फल छोटा होता है। एक फल में २–३ बीज होते हैं। इसका बीज सूख जाने पर काफी कठोर एवं हल्के उजले रंग का होता है। झारखण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्र में जनजातियों द्वारा खेसारी की थोड़ी खेती की जाती है।

औषधीय गुण

पशु के दस्त बीमारी में लाभदायक है। जब गाय, बैल, भैंस आदि मवेशी को दस्त पतला होता हो तो उस समय इसके पौधे को मवेशी को खिलाने से पतला दस्त ठीक हो जाता है।

नोट :– इसका उपयोग पशुओं में किया जाता है।

गम्हार

वैज्ञानिक नाम : ग्मेलिना अरबोरिया

गम्हार का वृक्ष मध्यम आकार का होता है। इसकी छाल भूरा गेहूँआ एवं चिकनी होती है। पत्ते चौड़े हरे एवं अंडाकार होते हैं। तने शाखाओं में बँटे होते हैं। फल कठोर, सफेद होता है जिसके अन्दर बीज सुरक्षित रहता है। यह झारखंड के विशेषकर पहाड़ों के सर्द (ठण्ढा) भाग वाले क्षेत्र में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके वृक्ष साँप काटने एवं बिच्छू के डंक मारने में लाभप्रद होता है। इसके पत्ते के रस का प्रयोग कफ, कृमिनाशक, सुजाक में शान्ति पहुँचाता है। खुजली–फुसी एवं फोड़े में गम्हार की छाल पीसकर लगाने से आराम मिलता है। दर्दनाक मूत्र अवरोध में गम्भार की छाल को पीसकर पिलाने से ठीक होता है। विष एवं विषैले दंश में छाल को पीसकर पिलाने से लाभ होता है।

शराब के विष में गम्हार की छाल/कोमल पत्ते को पीसकर पिलाने से ठीक होता है।

गंधपूर्ण/गंधपूरा

वैज्ञानिक नाम : गाउल्थेरिया फ्रेगरेटिमा

गंधपूर्ण का पौधा सदाहरित एवं झाड़ीनुमा होता है। तने शाखित (शाखाओं में बँटे हुए) होते हैं। इसकी छाल नारंगी या भूरे रंग की होती है। पत्ते लंबे और काफी चौड़े होते हैं। फूल छोटे, हल्के हरे रंग के तथा गुच्छों में लगे होते हैं। फल गोल होते हैं। यह पौधा उत्तरी, पूर्वी तथा दक्षिणी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

गन्ध पूर्ण के ताजे पौधे से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है, जिसे "गन्ध पूर्ण" कहते हैं। यह औषधि में काम आता है। इसका तेल पाचक एवं उत्तेजक तथा हुकवर्म (पेट में पाये जाने वाले कृमि) को नष्ट करने में लाभ पहुंचाता है। कुछ औषधियों से बने मलहम व तेलों का प्रयोग करने से जलन होती है। वैसे समय में गन्धपूर्ण का तेल लगाने से जलन दूर हो जाती है।

ग्वारपाठा

वानस्पतिक नाम : एलोए भीरा

यह हरा रंग का झाड़ीदार पौधा है। इसका पत्ता हरे रंग का मोटा धारयुक्त काँटेदार होता है। पत्ते को तोड़ने से चिकना एवं ठण्डा गाढ़ा रस निकलता है। पत्ता शुरुआत में अधिक चौड़ा और अन्तभाग में संकुचित होता जाता है। ग्वारपाठा झारखण्ड राज्य के गुमला जिले के जंगलों एवं पहाड़ों पर पानी वाली जगहों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

ग्वारपाठा यकृत बीमारी के लिए लाभदायक है। यकृत बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को बीमारी के प्रारंभ में इसके पत्ते को पीसकर लगातार एक महीना तक सुबह–शाम पिलाने से ठीक होने की संभावना रहती है।

गन्ना

वानस्पतिक नाम : सेकेरम आफीसीनेरम

गन्ना पतला एवं लंबा होता है। इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक लगभग १० फीट तक होती है। इसके तने में कई गांठें होती हं। इसका पत्ता हरा रंग का होता है। पत्तों की चौड़ाई कम, लेकिन लंबाई अधिक होती है। गन्ना हल्के हरे एवं सफेद और गहरे लाल रंग का भी होता है। गन्ने का फूल इसके शीर्ष पर सफेद रंग का होता है। इसका फूल अंतिम समय में होता है।

गन्ना सम्पूर्ण झारखण्ड के अतिरिक्त और कई राज्यों में उपजाया जाता है।

औषधीय गुण

पीलिया बीमारी में इसका रस लाभदायक होता है। पीलिया बीमार पीड़ित व्यक्ति को सुबह–शाम पाँच दिन पिलाने से ठीक हो जाता है।

गुलाब का फूल

वैज्ञानिक नाम : रोसा सेन्टीफोलिया

गुलाब छोटा वृक्ष है। इसका पत्ता छोटा एवं हरे रंग का होता है। पत्तों के किनारे हंसुआ के दाँत के आकार के होते हैं। एक डंठी में पत्ता ३–५ की

संख्या में पाया जाता है। अंतिम पत्ते का आकार अन्य पत्तों की तुलना में बड़ा होता है। इसकी संपूर्ण शाखाओं में काँटे होते हैं। गुलाब का फूल कई रंगों के सफेद, लाल, एवं पीला आदि, होते हैं। गुलाब का फल छोटा होता है। गुलाब संपूर्ण झारखंड के बगीचों, शहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भी पाया जाता है।

औषधीय गुण

गुलाब का फूल पित्तनाशक एवं कब्जियत में लाभदायक है। ताजा गुलाब के फूल को तोड़कर बराबर भाग मिश्री मिलाकर हाथों से रगड़कर चौड़े मुंह की बोतल में भरकर एक सप्ताह तक धूप में रखा जाता है। इसे मिश्री की जगह शहद मिलाकर भी बनाया जा सकता है। एक सप्ताह तक सुबह खाली पेट में खाने से यह पित्तनाशक होता है एवं कब्जियत ठीक होती है।

गम्हारी

गंभारी बड़ा वृक्ष है। इसका पत्ता हरा रंग का बड़ा और गोलाकार होता है। फूल नीले रंग का होता है। फल छोटा एवं नींबू जैसे आकार का होता है। फल में दो–तीन बीज होते हैं। गंभारी छोटानागपुर के गुमला जिला एवं पलामू जिले के स्थानीय जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

गंभारी गर्भ विकास, खुजली एवं हृदय रोग में लाभदायक है। इसके फल के मज्जा के साथ मिलाकर सुबह खाली पेट में एक माह तक खिलाने से गर्भ नहीं ठहरने वाली औरत का गर्भ ठहरने लगता है। गंभारी के पत्तों का रस पिलाने एवं लगाने से खुजली एक सप्ताह में ठीक हो जाता है। इसकी छाल का काढ़ा बनाकर लगातार एक माह तक पिलाने से हृदय एवं क्षय रोग ठीक हो जाता है। इसके पत्ते एवं फल के रस के साथ गाय का दूध एक माह तक लगातार सुबह खाली पेट में खिलाने से जिस औरत का स्तन का विकास नहीं हुआ है उसका विकास निश्चित आकार में होने लगता है।

नोट :– महिला रोग में लाभप्रद।

गिलोय

वानस्पतिक नाम : टीनोस्पोरा कार्डीलिया

गिलोय एक प्रकार का झाड़ीदार और छोटे पौधे जैसे ही आकार–प्रकार का होता है। यह किसी भी बड़े–पेड़ की शाखाओं में अपने आप उगता है। यह दूसरे पेड़ की शाखा से अपना भोजन ग्रहण करता है। इसकी सम्पूर्ण झाड़ी का रंग हरा होता है। दो इंच की दूरी पर इसकी प्रत्येक शाखाओं पर गाँठ पायी जाती है। इसकी संपूर्ण शाखाएं चपटी होती हैं। बेल, नीम एवं आम पेड़ की शाखाओं पर उगे गिलोय को औषधि के रूप में अति उत्तम माना जाता है। गिलोय सम्पूर्ण झारखंड में सर्वत्र पाया जाता है।

औषधीय गुण

गिलोय पित्तवर्द्धक और गर्भवती औरत के लिए स्वास्थ्यप्रद एवं सामान्य प्रसव में लाभदायक होता है। इसकी ताजा शाखा को तोड़कर पिसकर सुबह खाली पेट में ३–४ दिन पिलाने से पित्तवर्द्धक रोकता है। इसकी ताजी शाखाओं को पानी में हल्का उबालकर पीसकर मधुरस के साथ गर्भवती महिला को आठवाँ माह के प्रारंभ में ३–४ दिन एक कप पिलाने से स्त्री स्वस्थ रहती एवं उसका प्रसव सामान्य रूप से होता है। गिलोय की शाखाओं को सूखाकर पौष्टक औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके तनों और जड़ों से प्राप्त स्टार्च अतिसार एवं पेचिश में उपयोगी होता है। इसके बीज को हाइड्रोफोबिया में वमन (2) कराने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

गुलर (डूम्बर)

वानस्पतिक नाम : फीकस ग्लोमीराटा

गुलर का पेड़ बड़ा होता है। इसका पत्ता मध्यम आकार और हरे रंग का होता है। फल छोटा एवं गोल आकार का होता है। कच्ची अवस्था में फल का रंग हरा और पकने पर हल्का लाल रंग का हो जाता है। फल के अन्दर छोटे–छोटे कई बीज होते हैं। यह झारखण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्र में पाया जाता है।

औषधीय गुण

गुलर महिलाओं के मासिक धर्म की गड़बड़ी में लाभदायक है। गुलर के फल को सुखाकर चूर्ण बना लिया जाता है। इसके चूर्ण को सुबह खाली पेट

में लगातार एक माह तक खिलाने से महिला का मासिक धर्म निश्चित समय में सामान्य रूप से होने लगता है। गुलर की छाल के काढ़ा से दर्द वाले घाव को धोने से आराम मिलता है। गुलर छाल का चूर्ण जिद्दी या दुराग्रही घाव में लगाने से ठीक होता है।

गुलर के पक्के फल का चूर्ण बनाकर आधा से एक चाय–चम्मच दिन में तीन बार देने से गर्भावस्था में उल्टी आना ठीक होता है। गुलर के पक्के फलों के चूर्ण को आधा से एक चाय–चम्मच दिन में दो बार थोड़ा मधु या गुड़ के साथ खाने से गर्भपात के बाद का रक्तस्राव ठीक होता है।

गाजर

वानस्पतिक नाम : डाउकस केरोटा

गाजर कन्द वाला एक छोटा पौधा है। गाजर का कन्द जमीन के अन्दर में हल्के नारंगी रंग का होता है। इसका पत्ता छोटा एवं हरे रंग का होता है। गाजर झारखण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्र में उपजाया जाता है।

औषधीय गुण

गाजर बच्चों के दूध दाँत निकलने, शरीर का अच्छा विकास, हृदय की कमजोरी एवं चर्म रोग में लाभप्रद है। बच्चों के दाँत निकलते समय गाजर का रस पिलाते रहने से दाँत आसनी से निकल जाता है। गाजर का ५० मिलीग्राम रस दिन में दो बार १५–२० दिन तक पीने से शरीर का विकास होता है और हृदय रोग ठीक हो जाता है। चर्मरोग में गाजर को पीसकर शरीर में मलने से चर्मरोग एक सप्ताह के अन्दर ठीक होता है।

गांजा पत्ता

वैज्ञानिक नाम : केनेभीस सेटीभा

इसका पौधा गेंदे के पौधे जैसा हरा, लंबा होता है। इसका तना चिकना नहीं होता है। पत्ते लंबे, एवं किनारे बँटे हुए होते हैं।

औषधीय गुण

इसके पत्ते को चूर्ण बनाकर सुखाकर नशा हेतु सेवन करते हैं। पर यह

भूख को भी काफी बढ़ाता है। इसके पत्ते को सुखाकर चूर्ण बनाकर सेवन करने से भूख बढ़ती है।

गोंह

यह जंगली जीव है। यह देखने में साण्डा जैसा लगता है। यह जीव विशेषकर बरसात के मौसम में जंगलों में पाया जाता है। इसके चार पैर एवं पूँछ होती है। शरीर खुरदुरा एवं भूरा होता हैं यह झारखंड के पहाड़ों, जंगलों के टीलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इस जीव को जिन्दा किसी गर्म बर्तन में डालकर तेल निकाला जाता है। इस तेल से गठिया वात से सुस्त अंग को ३–४ दिनों तक सुबह–शाम मालिश करने से ठीक हो जाता है।

गेंदा फूल

वानस्पतिक नाम : टेगेटस इरेक्टा

यह एक प्रकार का झाड़ी है। इसके तीन–चार पत्ते संयुक्त रहते हैं। वह रुखड़ा होता है। पत्तों में बहुत छोटी–छोटी शिराएँ होती हैं। इसका रंग हरा होता है। इसे गाँव में घर तथा आँगन–कुआँ के आस–पास शोभा हेतु लगाते हैं। औषधीय गुण कटे हुए स्थान पर या घाव पर इसके पत्ते को पीसकर लगाने पर ठीक हो जाता है।

गुंज पेड़

वैज्ञानिक नाम : एबरस प्रीकेटोरियस

यह मध्यम आकार का पौधा है। इसका पत्ता मध्यम आकार का हरा रंग लिए होता है। यह पलामू जिले के गारु प्रखण्ड के स्थानीय जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसे बेहोश रोगी को होश में लाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके बीज को रोगी के गले में टाँगने से एवं बीज के एक भाग दाने को चटाने से

रोगी होश में आ जाता है। उपरोक्त जानकारी गारु प्रखण्ड के लालदेव भगत से मिली है।

घोड़बच/बच

वैज्ञानिक नाम : एकोरस केलेमस

घोड़बच एक छोटा पौधा है। इसके प्रकन्द (कन्दा) विभाजित होकर भूमि में दूर–दूर तक फैल जाते हैं। फूल छोटे, केलई रंग के होते हैं। फल पीले रंग के होते हैं। यह नमी वाले स्थानों में अधिक पाया जाता है।

औषधीय गुण

घोड़बच के प्रकन्द को सुखाकर औषधि के रूप में प्रयोग करते हैं। इसमें एक वाष्पशील तेल होता है जिसके कारण इसमें वायु दूर करने का गुण होता है। यह पेट फूलने में शान्ति पहुँचाती है। भूख बढ़ाती है। यह दमा रोग, पेचिश और अतिसार में लाभप्रद है। इसकी जड़ों को पीसकर कृमिनाशक औषधि भी बनाई जाती है। एल्कोहल में बनाए गए बच के रस में पीड़ाहार (दर्दनिवारक) गुण होते हैं। इस कारण बच मानसिक रोगों में प्रयोग होता है।

इसकी जड़ के चूर्ण एक चुटकी मधु के साथ खाने से एन्टिबायोटिक का काम करता है। मिर्गी में इसकी जड़ का चूर्ण बनाकर एक–दो चुटकी मधु के साथ सुबह खाली पेट ३० दिनों तक खाने से लाभ होता है।

घृतकुमारी/घृत कुवारी/घी कुआर

वैज्ञानिक नाम : एलोय बारबेडेनसीस

यह छोटा शाकीय पौधा है। इसके पत्ते हल्के पीले हरे रंग के मांसल एवं लंबे होते हैं और नीचे पर पायी जाती हैं, जो मटमैले रंग की होती हैं। पत्ते का अगला सिरा नुकीला होता है। यह झारखण्ड क्षेत्रों में औषधीय गुण के लिए ही लगाए जाते है।

औषधीय गुण

पेट की कृमि को मारने के लिए पत्ते के रस को पिलाया जाता है। पत्ते को पीसकर आग से जले हुए स्थान में लगाने से आराम मिलता है। मासिक धर्म खत्म होने के बाद एक बार फिर दूसरे महीने पेड़ एवं पत्ते को पीसकर

देने से बच्चा जन्म नहीं लेता है। इसके पत्ते को पीसकर काढ़ा बनाकर खाली पेट में दवा के रूप लेते हैं अर्थात् गर्भनिरोधक कार्य करता है।

पत्तों का सलाद के रूप में अनपच के समय लेने से लाभ होता है। अनियमित रक्तस्राव में घृतकुवारी के पत्ते के गुद्दा को २–४ चम्मच चीनी के साथ दिन में दो बार १०–१२ दिनों तक खिलाने से ठीक होता है।

घुमा साग

घुमा साग छोटा पौधा है। इसका पत्ता छोटा एवं हरे रंग का होता है। इसका फूल सफेद होता है। इसका फल छोटा होता है। राँची, गुमला और लोहरदगा जिलों के खेतों एवं मैदानों में घुमा साग पाया जाता है।

औषधीय गुण

यह कैंसर, एड्स एवं टी.बी. में लाभदायक है। मनुष्य के शरीर में श्वेत रक्त कणों (डब्लू. बी.सी.) की संख्या घटने लगती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है, तो वैसी दशा में मनुष्य को अनेक प्रकार की बीमारी जैसे– एड्स, टी.बी. और कैंसर हो जाता है, इस अवस्था में व्यक्ति को घुमा साग प्रयोग करना चाहिए। घुमा साग को सब्जी के रूप में लगातार एक महीना तक प्रयोग करने से कैंसर एवं टी.बी. में लाभदायक होता है।

उपरोक्त जानकारी गुमला जिला के विशुनपुर प्रखण्ड के वैद्य राजेन्द्र ने दी है।

चिरचिरी/अपामार्ग

वैज्ञानिक नाम : एकेरेन्थस एसपेरा

चिरचिरी झाड़ीनुमा छोटा पौधा है। इसका पत्ता छोटा एवं गोलाकार होता है, जिसका रंग हरा होता है। इसका फूल छोटा एवं काँटेदार होता है। इसका फल भी हल्का हरा एवं छोटे–छोटे काँटे युक्त होता है। यह संपूर्ण झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में पाया जाता है, विशेषकर टाँड़ में।

औषधीय गुण

प्रायः इसकी जड़ औषधि के रूप में प्रयोग की जाती है। गुमला जिला के विशुनपुर प्रखण्ड के वैद्य राजेन्द्र उराँव ने बतलाया कि दाँत दर्द में जड़ को

पीसकर बनाये गये घोल का प्रयोग लाभप्रद होता है। सूअर को गाल फुलने वाली बीमारी होने पर इसकी जड़ एक–दो बार खाने के साथ खिलाने से आराम होता है। इस क्षेत्र की जनजातियों के बीच अंधविश्वास है कि घर के दरवाजे पर इसको टाँगने से भूत–प्रेत घर में नहीं प्रवेश करता है।

इसकी जड़ को सिर में दर्द की स्थिति में रखने से (लगभग १० मिनट) आराम मिलता है। यह पौधा पेट दर्द, बवासीर, साँप–बिच्छू काटने इत्यादि में लाभप्रद होता है। इसकी जड़ का काढ़ा दस्त रोकने के भी काम में आता है। बिच्छू दंश में इस पौधे के पत्ते फूल–फल को तोड़कर हाथ से मलते हैं। हाथ में पूरा रस आ जाने पर दोनों हाथों से दर्द वाले स्थान से कुछ ऊपर से पकड़कर दवा पोंछते हुए प्रभावित अंग पर लगाते हैं। ऐसा लगभग तीन बार करने से लाभ होता है। मलेरिया बुखार में चिरचिरी की जड़ तथा मीठा घास को बराबर–बराबर मिलाकर पीसकर उसे पानी में घोल कर आधा कप दिन में तीन बार १० दिनों तक पीने से लाभ होता है।

चीड़/पाइन

वैज्ञानिक नाम : पाइनस राक्सबरघी

चीड़ का वृक्ष काफी बड़ा होता है। पत्ते लंबे सूई के आकार के होते हैं। फल कोन के रूप में पाये जाते हैं। नरकोन छोटी एवं मादा कोन लंबी एवं बड़ी होती है। चीड़ का वृक्ष ज्यादातर पहाड़ी क्षेत्रों में तथा पर्वतीय क्षेत्रों में होता है।

औषधीय गुण

औषधि के रूप में इसके वृक्ष से एक राल (रस) जैसा पदार्थ (रेजिन) तारपीन निकलता है जिसे "तारपीन तेल" कहते हैं। इसे त्वचा में लगाने से उत्तेजना पैदा करती है। पुरानी खाँसी, या श्वास नली की सूजन, पेट में ऐंठन, मसूड़ों व नाक से खून आना, इन सभी के लिए थोड़ी मात्रा में इसके तेल का प्रयोग करते हैं। यह विशेष रूप से गठिया आदि के दर्द में लगाने, लेप, लोशन व आदि बनाने के काम आता है।

चंदन

वैज्ञानिक नाम : सांटालुम अल्बुम (आल्बम)

यह मध्यम आकार का सदाहरित पौधा है। इसकी शाखाएँ नीचे–नीचे की ओर झुकी–सी होती है। इसकी छाल काली व खुरदरी होती है। पत्ते, आमने–सामने लगे तथा चमकीले होते हैं। फूल छोटे, गुलाबी/बैंगनी रंग के गुच्छों में लगे होते हैं। फल गोल, गाँठें, बैंगनी/काले रंग के होते हैं। इसके पौधे झारखण्ड में बहुत ही कम संख्या में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

चंदन के अन्दर की लकड़ी (अंतः काष्ठ) से प्राप्त तेल औषधि के रूप में प्रयोग आता है। इस तेल का प्रयोग मूत्राशय की सूजन, सुजाक तथा खाँसी में प्रयोग करते हैं। चंदन की लकड़ी को पानी में घिसकर किसी भी अंग के सूजन, सिर–दर्द एवं त्वचा रोग में लगाने से फायदा होता है। चंदन के बीज का तेल त्वचा रोग में लाभप्रद होता है।

चिरायता/चिरैता

वैज्ञानिक नाम : स्वेंटिआ चिराटा

चिरैता छोटा, शाकीय एवं एक वर्षीय पौधा है। इसके पत्ते टहनियों की गाँठों पर आमने–सामने होते हैं। डंठल अनुपस्थित होता है। पत्ते हरे और लंबे होते हैं। इसके फूल बरसात में हरे–पीले–बैंगनी मिश्रित रंग का होता है। फल अण्डाकार छोटे, एवं साथ में कई रहते हैं। चिरैता पर्वतीय स्थानों पर ज्यादा पाया जाता है। इसका संग्रह शरद ऋतु में किया जाता है।

औषधीय गुण

फूल लगने के समय पूरे पौधे को उखाड़कर सुखा दिया जाता है। पूरा पौधा ही औषधि का कार्य करता है। यह ज्वरनाशक, पाचक, कृमियों के नाश के लिए लाभप्रद होता है। इसका प्रयोग अतिसार, दुर्बलता एवं रक्त को साफ करने में भी लाभकारी है। मलेरिया में चिरैता का पंचांग पानी के साथ या उसका काढ़ा आधा–आधा कप दिन में दो से तीन बार दस दिनों तक देने से मलेरिया ठीक होता है। यह एक प्रकार की प्रति संक्रामक (एण्टी बायोटिक)

औषधि है जो ज्वर उत्पन्न करने वाले मूल कारणों का निवारण करती है। जीर्ण ज्वर के साथ शरीर में दाह एवं अपच हो तो यह लाभकारी होता है।

चकोड़/चाकोड़

साग वैज्ञानिक नाम : केसिया टोरा

चकोड़ शाकीय जमीन की सतह से कुछ उठी, एक वर्षीय हरा पौधा है। इसमें तीन जोड़ पत्रक (छोटे पत्ते) गोलाकार होते हैं। फूल जोड़े में, हल्के पीले रंग के होते हैं। इसके तने पतले, ठोस, हरे एवं मजबूत होते हैं। यह प्रायः झारखंड के क्षेत्रों में खरपतवार के रूप में पाया जाता है।

औषधीय गुण

चकोड़ की जड़ का लेई बनाकर गाय के सींग के साथ मिलाकर चूर्ण बनाकर प्रतिदिन एक बार उच्च ज्वर एवं वैसे रोगी को जो सुन या बोल नहीं सकते उसे पिलाया जाता है। क्षेत्र के वैद्य इसका उपयोग पेट में पत्थरी हो जाने पर उसके निदान के लिए करते हैं। यदि पथरी हो गयी हो तो चकोड़ साग और कुरथी दाल का प्रयोग करते हैं। पथरी मूत्र से बाहर निकल जाती है। इसका इलाज काफी लंबे समय तक किया जाता है। शीघ्र प्रसव के लिए चकोड़ की ताजी जड़ लेकर योनि में डालते हैं। प्रसव के बाद तुरन्त हटा दिया जाता है।

चौलाई साग

वानस्पतिक नाम : एमेरेन्थस ब्लीटम

चौलाई साग छोटा पौधा है। वर्षा ऋतु में अधिक उगता है। इसका पत्ता छोटा एवं गोलाकार होता है। फूल छोटे एवं हल्के सफेद रंग के होते हैं। इसके फल एवं बीज भी काफी छोटे होते हैं। चौलाई साग सम्पूर्ण झारखंड के बगीचे एवं खेतों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

चौलाई साग नेत्र रोग के लिए लाभदायक होता है। चौलाई साग के मूल को पीसकर दूध के साथ मिलाकर दिन में दो बार करके ३–४ दिनों तक नेत्र में लगाने से आँख में गड़ना (आँख आना) बीमारी ठीक होती है।

चावल कन्दा

चावल कन्दा छोटा पौधा है। इसका पत्ता छोटा एवं हरे रंग का होता है। फूल चावल के आकार का सफेद रंग का होता है। इसके फल एवं बीज भी चावल के आकार के होते हैं। इसका कन्दा होता है। चावल कन्दा के पौधे बिशुनपुर प्रखण्ड के स्थानीय पहाड़ों एवं जंगलों में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

यह मर्दानी शक्ति बढ़ाने में लाभदायक है। चावल कन्दा को पानी में भापकर सुबह खाली पेट में १५ दिन तक खाने से पुरुषों की मर्दानी शक्ति बढ़ जाती है।

चरईगोड़वा

वानस्पतिक नाम : भीटेक्स पेड़नकुलेरीस

चरईगोड़वा मध्य आकार का सदाहरित पौधा है। इसके पत्ते हरे रंग के तथा तीन फलक चिड़ियाँ के पैर के आकार जैसे होते हैं। इसके फूल हल्के पीले रंग के तथा फल छोटे गोलाकार होते हैं। यह पौधा जंगलों में पाया जाता है। पलामू जिला एवं गुमला जिला के ग्रामीण क्षेत्रों में अल्पमात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

चरईगोड़वा की जड़ को पानी में उबालकर पीड़ित व्यक्ति को पिलाने से हृदय रोग दूर होता है। सिमजंगा (चइर्रगोड़वा) की छाल औषधि के रूप में उपयोग की जाती है। साँप काटे हुए व्यक्ति को चरईगोड़वा के पीसे हुए छिलके को पानी के साथ मिलाकर पिलाया जाता है। साँप द्वारा काटे गये स्थान पर इसके पीसे हुए छिलकों को लगाने पर साँप का विष खत्म होता है। सिमजंगा (चरईगोड़वा) के ताजे पत्तों को सुखाकर चूर्ण बनाकर एक–एक कप दिन में दो–तीन बार १२ दिनों तक सेवन करने से मलेरिया भी ठीक होता है। इसकी छाल को कूटकर पानी में छान लिया जाता है तथा आधा ग्लास खाली पेट में पीने से खून साफ होता है तथा इसकी छाल को खौला कर पीने से पीलिया रोग में भी आराम पहुँचता है।

उच्च रक्त चाप में इसके ताजे पत्तों या छाल का काढ़ा बनाकर सुबह–शाम आधा कप १५–२० दिनों तक पीने से उच्च रक्त चाप ठीक होता है। निम्न रक्त

चाप में भी इसके पत्तों की चाय बनाकर सुबह–शाम एक कप १५–२० दिनों तक पीने से लाभ होता है।

चमगादड़

वैज्ञानिक नाम : टेरोपस

चमगादड़ एक स्तनधारी पक्षी है जो रात्रिचर है। एक बड़े चमगादड़ से लगभग एक कि.ग्रा. तक मांस प्राप्त होता है। इसके पैर में हुक के आकार का नाखून होता है जिसके सहारे वृक्षों में उल्टे रूप से लटका रहता है। यह रात के समय भोजन की खोज में निकलता है। यह प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

दमा एवं खाँसी में इसके मांस को नमक, तेल, मसाले के साथ पकाकर २–३ दिनों तक खिलाने से लाभ होता है।

चिलबिलिया

वैज्ञानिक नाम : होलोटेलिया इंटेगरिफोलिया

यह एक विशाल वृक्ष है। इसका पत्ता बड़ा, मोटा, हरा तथा कोमल होता है। यह शाखाओं में बँटा होता है। यह झारखंड के पहाड़ों एवं जंगलों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके पत्ते का रस सफेद दाग मिटाने में लाभदायक होता है। इस वृक्ष के ताजे पत्ते को तोड़कर चूर्ण बना दिया जाता है और उस चूर्ण को सफेद दाग वाले स्थान में लगाया जाता है जिससे सफेद दाग एक सप्ताह के अन्दर खत्म हो जाता है। इस पत्ते के रस को दिनाय में भी लगाने से एक सप्ताह के अन्दर समाप्त हो जाता है। सरदर्द में चिलबिलिया की ताजी टहनी या डाल से छाल निकालकर कपाल में बाँध देने से लाभ होता है।

छातिन/छातनी

वानस्पतिक नाम : आल्सटोनिया स्कोलारिस

छातिन का वृक्ष सदाहरित, अत्यंत विशाल होता है। वृक्ष खुरदरा व भूरा होता है। वृक्ष की शाखाओं, पत्तों आदि में सफेद कड़ूवा रस होता है। पत्ते लंबे

तथा चीमड़ होते हैं। फूल सफेद या केलई रंग का सुगंधित एवं शाखाओं के शीर्ष पर छोटे–छोटे गुच्छों में लगे होते हैं। यह वृक्ष अधिकतर वर्षा वाले नम क्षेत्रों में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

वृक्ष की छाल औषधि के काम आती है। यह औषधि पुराने अतिसार, पेचिश एवं मलेरिया बुखार में उपयोगी होती है। यह त्वचा रोगों में भी लाभप्रद होता है। यह औषधि रक्तचाप घटाने हेतु भी उपयोगी होती है। छाल का प्रयोग एंटिबायोटिक और पेट दर्द में उपयोगी है। इसके वृक्ष की छाल का चूर्ण १–१ चुटकी दिन में २–३ बार खाली पेट में खाने से एन्टिबायोटिक का काम करता है। पानी वाले एक्जिमा में छातिन की छाल को काढ़ा में भिंगाकर खूब साफ करके लगाते हैं। जिद्दी या दुराग्रही घाव धोने के लिए छातिन छाल का काढ़ा अति उत्तम होता है।

जामुन

वैज्ञानिक नाम : सीजिजिअम क्यूमिनी

जामुन का वृक्ष सदाहरित एवं बड़ा होता है। इसका पत्ता हल्का चौड़ा और हरा होता है। इसका फल कच्चा में हरा, पकने पर बैंगनी रंग का होता है। वृक्ष शाखाओं में बँटा होता है। तना खुरदरा होता है। यह सम्पूर्ण झरखंड के जंगली क्षेत्रों, गाँवों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

जामुन के मौसम में इसे खाने से जिगर की बीमारी में लाभ होता है। बानो प्रखण्ड के वैद्य गेबरियल हेम्ब्रम ने अध्ययन के क्रम में साक्षात्कार में बताया कि 'मैं स्वयं पीलिया रोग से ग्रस्त था। उस स्थिति में मैं स्वयं जामुन के पके फल का नियमित उपयोग किया जिससे मुझे इस रोग में काफी लाभ हुआ, साथ ही साथ अन्य छोटी बीमारियाँ ठीक हो गई।' जामुन मधुमेह बीमारी में लाभदायक होता है। इसमें जामुन की गुठली का (कच्चा/सूखा) चूर्ण बनाकर १–१ चम्मच पानी मिलाकर सुबह–शाम लगातार १०–१२ दिनों तक खाने से ठीक होता है।

जामुन का १०० ग्राम ताजा छाल आधा लीटर पानी में उबालकर चौथाई शेष को एक कप कर दिन में तीन बार तीन दिनों तक देने से अतिसार में लाभ होता है। पके जामुन के फल का रस १–१ ग्लास दिन में तीन बार एक

सप्ताह तक लगातार पीने से बहुमूत्र ठीक होता है। स्कर्वी में जामुन के कोमल पत्ते को चबाया जाता है और थूका जाता है। दिन में दो–तीन बार १० दिनों तक ऐसा करने से ठीक होता है।

हैजा की बीमारी में जामुन का सिरका और महुआ का फुली दारू मिलाकर एक–दो चाय चम्मच से पिलाते हैं। यदि एक बार में असर नहीं होता है तो आधे घंटे पर देते हैं। जामुन की हरी छाल को बारीक पीस कर मंजन जैसा प्रयोग करने से पायरिया तथा दाँत की बीमारी ठीक हो जाती है।

जीरा

वानस्पतिक नाम : क्यूमीनम सायमीनम

जीरा बहुत छोटा पौधा है। यह मसालों के समूह में आता है। इसके पत्ते बहुत छोटे, महीन एवं हरे होते हैं। इसका फूल छोटा और हल्का सफेद होता है। फल छोटे होते हैं। यह एक सुगंधित पौधा है। जीरा का प्रयोग सभी लोग मसाला के रूप में सब्जी के साथ करते हैं। जीरा की खेती संपूर्ण भारत में की जाती है।

औषधीय गुण

यह वमन, दूध वृद्धि एवं अम्लपित्त में लाभदायक होता है। गर्भवती महिलाओं में वमन के समय कुछ ताजे जीरे के साथ काला नमक खाने से फायदा होता है। प्रसव के बाद महिलाओं में दूध नहीं होने की अवस्था में रोटी में जीरा मिलाकर पकाकर ३–४ खुराक खिलाने से शीघ्र दूध स्रावित होने लगता है। अम्लपित में ५० ग्राम चीनी मिलाकर पीसकर तीन दिनों तक सुबह–शाम खाने से ठीक होता है।

जंगली प्याज

वैज्ञानिक नाम : ऊरजीनिआ इण्डिका

जंगली प्याज एक छोटा पौधा होता है। इसमें कन्द आता है। कन्द का आकार अण्डाकार या गोल, मटमैले सफेद या पीले रंग का होता है। कन्द के पास वाले पत्ते लंबे, नुकीले होते हैं। फूल भूरे रंग के होते हैं। फल लंबे और संकरे होते हैं। बीज काले होते हैं। ये झारखण्ड के कई स्थानों में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

जंगली प्याज का कन्दा औषधि के रूप में काम आता है। यह हृदय के रोगों में, खाँसी, श्वासनली की सूजन में लाभप्रद हैं। यह मूत्र विचेरक भी है। इसके बने मलहम फोड़ों तथा जले जख्मों में भी लगाए जाते हैं।

टमाटर

वैज्ञानिक नाम : लायकोपरसीकम एस्कुलेनटम

टमाटर मौसमी पौधा है। इसके तने हल्के हरे सफेद रोएंदार होते हैं। गाँठ में ही फूल एवं फल लगता है। टमाटर कच्चा में हरा एवं पकने के बाद लाल हो जाता है। इसकी खेती प्रायः सभी जगहों पर की जाती है।

औषधीय गुण

फुन्सी एवं मुँहासे पर इसके पत्ते पीसकर–मलकर चेहरा पर एक सप्ताह तक लगाने से चेहरा साफ हो जाता है। पेट में कीड़े होने की स्थिति में टमाटर को नमक और काली मिर्च के साथ लगभग १५ दिनों तक खाने से लाभ होता है।

परहेज – ३ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को नहीं देना चाहिए। टमाटर के पत्ते को पीसकर सिर के बाल में लगाने से रूसी या बाल का झड़ना कम होता है।

तुलसी

वैज्ञानिक नाम : आकीमम सेंकटम

तुलसी अत्यंत शाखित, शाकीय, अत्यंत रोम वाला पौधा होता है। पत्ते आमने–सामने जोड़े में उपस्थित होते हैं। फूल छोटे गुलाबी या हल्के कत्थे रंग के होते हैं। यह पौधा छोटा एवं सुगंधयुक्त होता है।

यह संपूर्ण झारखंड में पाया जाता है। इसे प्रायः घरों के आंगन में, उद्यानों में और मंदिरों के आस–पास लगाया जाता है। इसका धार्मिक महत्त्व काफी है। यह बहुत ही लोकप्रिय एवं औषधि के रूप में उपयोगी पौधा है। इसे सभी मौसम में किसी न किसी रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

औषधीय गुण

तुलसी के पत्ते, फूल, मूल और बीज औषधि के रूप में काम आते हैं। पत्तों का काढ़ा (रस या क्वाथ) श्वाँस नली की सूजन, जुकाम व अनपच में उपयोगी होता है। बच्चों को सर्दी में तुलसी पत्तों का चाय पीने को दिया जाता है। इससे सर्दी ठीक होती है। इसे दाद–खुजली व अन्य त्वचा रोगों पर भी लगाया जाता है। कान का दर्द दूर करने के लिए पत्तों के रस को थोड़ा गर्म कर उसमें मात्रानुसार कपूर मिलाकर ३–४ बूंद कान में डालते हैं। पत्तों से प्राप्त तेल बैक्टीरिया तथा कीड़ों का नाश करता है। अति रक्तस्राव एवं चक्कर आने पर तुलसी पत्ता को शहद में मिलाकर खाने से लाभ होता है। कुकुरखाँसी में तुलसी पत्ता के साथ काली मिर्च को पीसकर गोली बनाकर एक दिन में ३–४ गोली चूसकर खाने से लाभ होता है।

तुलसी की पत्तियों को पीसकर पीने से पाचन शक्ति तीव्र होती है। इसकी पत्तियों का रस और मूली का रस (मूली का रस तुलसी रस से दुगुना) मिलाकर गुड़ के साथ पिलाने से पीलिया ठीक होता है। इसके पत्ते को पानी के साथ पीसकर बनाया गया लेप चेहरा पर लगाने से चेहरे की झाइयाँ, दाग और धब्बे दूर होते हैं। तुलसी के बीज आधा गिलास पानी के साथ पाँच दिनों तक सोते समय प्रयोग करने से स्वप्नदोष बीमारी में लाभ होता है।

मधुमेह में प्रायः खाली पेट २१ तुलसी–पत्ता नियमित रूप से २१ दिनों तक सेवन करने से लाभप्रद परिणाम मिलता है। इसके पत्ते को शहद के साथ मिलाकर खाने से जुकाम ठीक होता है। तुलसी के २०–२५ ताजे पत्ते को मिश्री या चीनी के साथ उबाल कर दिन में दो बार एक माह तक सेवन करने से कैंसर में फायदा होता है। तुलसी का रस १० ग्राम एवं अदरक का रस ५ ग्राम मिलाकर सुबह–दोपहर–शाम में प्रयोग करने (चाटने) से मलेरिया का ज्वर उतर जाता है।

तालमखाना

वैज्ञानिक नाम : हीग्रोफिला आउरीकुलाटा

तालमखाना बड़ा, मध्यम या मझोला आकार का पौधा है। संपूर्ण पौधा हरा, एवं पत्ते अंतिम छोर पर नुकीले होते हैं। पौधे में सिर्फ एक सीधा तना होता है। तने रोमयुक्त होते हैं। फूल नीले या हल्के बैंगनी, सफेद रंग के होते

हैं। इसके फल एवं बीज काफी छोटे होते हैं। संपूर्ण झारखंड में यह खेतों, नमभूमि, सड़क के किनारे, सूखी नालियों में, सूखें तालाबों में, पानी से भरे गड्ढों के किनारे पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसका पौधा मूल (जड़) सहित औषधि में काम आता है। यह जलोदर पीलिया, गठिया तथा मूत्र एवं जननेन्द्रियों के रोग में काम आता है। समस्त पौधे में मूत्र विचेरक गुण होते हैं। तालमखाना के संपूर्ण (तना, फल, फूल पत्ता एवं जड़) पौधे को पीसकर थोड़ा पानी मिलाकर मोटी घोल बनाकर एक बार पीने से बुखार उतर जाता है अर्थात् यह बुखार में भी लाभदायक है।

दूब घास

वनसपति नाम : साइनोडोन डेक्टाइलोन

दूब घास एक प्रकार का लत्तर/लरंग है। यह हरी एवं मुलायम होती है। यह जमीन में बिछी हुई रहती है। इस घास में कई गाँठें होती हैं। गाँठों से ही जड़े एवं तनों की शाखाएँ निकलती हैं। इसके पत्ते लम्बे तथा छोटे–छोटे होते हैं। यह झारखंड के सभी क्षेत्रों, खेतों, मैदानों पर फैली हुई पायी जाती है, खासकर नमी वाले जगहों पर अधिकतर पायी जाती है।

औषधीय गुण

दूब घास और मिश्री को मिलाकर पीसा जाता है। तत्पश्चात् एक गिलास तीन दिनों तक सुबह खाली पेट में पीने से धातु रोग में फायदा होता है। इस घास को सरसों के तेल के साथ खुजली में लगाने पर आराम होता है तथा चने के साथ सिरदर्द में प्रयोग किया जाता है। प्रसव के बाद जिन स्त्रियों को दूध नहीं होता है उन स्त्रियों के दूध बढ़ाने के लिए दूब घास के साथ मोथा घास के कन्दा को पीसकर खाली पेट में लगातार १५ दिनों तक पिलाने से लाभ होता है। यह जानकारी गारु प्रखण्ड के वैद्य लालदेव भगत से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त की गई।

धनिया

वानस्पतिक नाम : कोरिऐन्ड्रम सेटीभम

धनिया एक छोटा पौधा होता है जो मसालों के समूह में आता है। धनिया

का सम्पूर्ण पौधा हरे रंग का होता है। इसके फूल हल्के सफेद रंग के तथा फल छोटे एवं गोलाकार होते हैं। धनिया प्रायः सम्पूर्ण झारखंड में उपजाये जाते हैं। जनजातीय खेतों में, बगानों में भी लगाया जाता है जो घर में खाने एवं स्थानीय बाजारों में बिक्री करने के काम आते हैं।

औषधीय गुण

सर्दी बुखार के समय सौ ग्राम सूखे धनिया को पीसकर शहद के साथ मिलाकर गर्म कर पीने से बुखार ठीक होता है। इसके पत्ते को पीसकर चटनी बनाकर खाया जाता है। इसे पानी में भिंगाकर पीने से पेट ठंडा करता है तथा धनिया को भूजकर खाने से अनपच में लाभ होता है।

धतूरा

वानस्पतिक नाम : धतूरा फेसटूओसा

धतूरा का पौधा झाड़ीनुमा (बैंगन के पौधे के समान) होता है। इसके पत्ते मध्यम एवं हरे रंग के होते हैं। इसका फूल बड़ा 'हल्का सफेद, भूरा एवं पीला' घंटीनुमा (शहनाई के आकार का) होता है। फल गोलाकार एवं हरा होता है। फल का ऊपरी हिस्सा काँटेदार और खुरदरा होता है। इस पौधे की शाखाएँ बहुत कमजोर होती हैं। थोड़ा बल लगने पर ही शाखाएँ एवं तने टूट जाते हैं। यह संपूर्ण झारखंड के गाँवों, जंगलों एवं शहरों में खासकर बरसात के दिनों में पाया जाता है। पुरूषों के अण्डवृद्धि में धतूरे के पत्ते को गर्म कर सेंकने के बाद लंगोटी के सहारे अण्डकोष में पट्टी बाँधने से १५–२० दिनों में अण्डवृद्धि ठीक होती है। शरीर में काँटा चुभे हुए स्थान पर धतूरे के पत्ते को गुड़ में लपेट कर लगाने से कठोर से कठोर काँटा गलकर उसी स्थान से पानी बनकर निकल जाता है। धतूरे के पत्ते के रस को सिर की त्वचा में लगाकर मसलने से जूं खत्म होती है। इस औषधि का प्रयोग वैद्य की सलाह के बिना करने से हानि भी हो सकती हैं। क्षेत्रीय अध्ययन के समय चंदना गाँव के सकटेश्वर, उम्र २४ वर्ष प्रखण्ड सुन्दर पहाड़ी ने बताया कि दो वर्ष पहले उसे अण्डवृद्धि की शिकायत थी। उसने धतूरे पत्ते को हल्का गर्म कर हाइड्रोसिल पर बाँधा था, जिसके बाद अब तक कोई शिकायत नहीं है।

धवई

वानस्पतिक नाम : उडफोर्डिया फुटीकोसा

धवई मध्यम आकार का पेड़ है। तने का रंग हल्का भूरा होता है। इसका पत्ता मध्यम एवं हरे रंग का होता है और पत्ता आगे की ओर चौड़ा रहता है तथा अंतिम छोर धीरे–धीरे नुकीला होता जाता है। इसका फूल हल्के पीले रंग का होता है। फल छोटा एवं चपटा होता है। धवई वृक्ष पूरे झारखंड के पहाड़ों, जंगलों एवं नदी किनारे पाया जाता है।

औषधीय गुण

टी.बी. बीमारी एवं पाचन की कमी में धवई फूल लाभदायक होता है। धवई फूल को सुखाकर चूर्ण बनाया जाता है। एक ग्लास गर्म पानी में एक चम्मच चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन सुबह–शाम ३० दिन तक पीने से टी.बी. बीमारी ठीक होता है। इसके फूल का चूर्ण खाने में कस्सा लगता है। पाचन की कमी एवं पेट गड़बड़ी भी उपरोक्त विधिनुसार ५ दिन तक खाने से ठीक होती है।

धतकी जड़

धतकी पेड़ एक छोटा पौधा है। इसके पत्ते भी छोटे होते हैं। इसका पौधा जंगलों एवं पहाड़ों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इस पौधे की जड़ को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस पौधे की जड़ के साथ इलची माछ, चेंग मांछ के साथ गोरैया का सिर (एक प्रकार की छोटी–चिड़िया जो घर के छज्जों में घोंसलों बनाती है) इन सबों को साथ मिलाकर जलाया जाता है। इसकी शेष बची राख को कम से कम १२१ दिन तक खाने से धातु रोग में लाभ पहुँचता है। दवा खाली पेट खानी पड़ती है।

परहेज – धातु रोग से ग्रस्त व्यक्ति को, खट्टा, तीता, अधिक तेल युक्त पदार्थ वर्जित है। मांस, मछली खाना नहीं है।

नीम

वानस्पतिक नाम : एजेडीराक्ता इण्डिका

नीम का पेड़ सदाहरित एवं बड़ा होता है। इसके पत्ते छोटे–छोटे हरे एवं संयुक्त रूप में होते हैं। इसके फूल हल्के हरे/पीले सफेद गुच्छों में होते हैं। फल गोल (कैप्सूल जैसे आकार का) कच्चा में हरा एवं पकने पर पीला होता है। नीम का पेड़ पूरे झारखण्ड के गाँवों, शहरों, जंगलों एवं मैदानों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

नीम का पत्ता पित्त निवारण में औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। जिस व्यक्ति को अत्यधिक पित्त हो गया है, उस व्यक्ति को खाली पेट नीम के पत्ते को पीसकर आधा ग्लास पिलाने से लाभ पहुँचता है। खुजली, खाज, खसुआ में नीम के पत्ते को पानी में उबालकर स्नान करते समय प्रभावित अंगों को रगड़–रगड़ कर साफ करने से लाभ होता है। चेचक रोग में भी नीम पानी का स्नान लाभदायक है। श्वेत प्रदर में नीम तने की छाल का रस एक चाय चम्मच और एक चम्मच शहद के साथ दिन में दो बार करके १५ दिनों तक देने से ठीक होता है। खुजली में नीम के पत्ते, हल्दी के गोल कंद को नीम तेल देकर मलहम बनाकर लगाने से ठीक होता है। पानी वाले एक्जिमा में नीम के पत्तों के चूर्ण तथा चरईगोड़वा के पत्तों के चूर्ण के साथ २४ गोल मिर्च १–१ चुटकी सुबह–शाम फाँकने से १५–२० दिनों में ठीक होता है। घाव धोने में नीम पत्ते या इसकी छाल का पानी फायदेमंद है। मोतियाबिन्द में नीमवाली (छोटा नया कोमल पत्ता) को पीसकर आँख में १५–२० दिन तक शाम को सोने के समय लगाने से ठीक होता है। चेचक में नीम पत्ते को हाथ से मसलकर शरीर में लगाने एवं एक सप्ताह तक बिस्तर में बिछाने से ठीक होता है। परिवार नियोजन में सहवास से पूर्व स्त्री के योनि में २–३ बूंद ताजा नीम का तेल डालने से गर्भ की संभावना कम रहती है। श्वेत कुष्ट रोग में नीम के भीतरी छाल को पीसकर कच्ची हल्दी के साथ काढ़ा (क्वॉथ) बनाकर लगाने से १५–२० दिनों में ठीक होता है। इसकी पत्तियों का प्रयोग दर्द, कटने पर तथा खून साफ करने में होता है। इसका दतुवन कीटाणुनाशक है जो दाँत एवं मसूड़ों को स्वस्थ रखता है। नीम की कोमल पत्तियों को पानी के साथ मिलाकर लगभग एक सप्ताह तक सेवन करने से खुजली में फायदा होता है।

नींबू

वानस्पतिक नाम : साइट्रस आउरेन्टीफोलिया

नींबू एक कंटीला, छोटा, अनेक शाखाओं वाला पौधा है। इसका पत्ता छोटा हरा एवं मोटा होता है। शाखाएँ नुकीली काँटे युक्त होती हैं। इसका फल गोलाकार, हरा एवं रसदार होता है जो तैयार होने पर पीला रंग का हो जाता है। ये झारखंड के गाँवों, देहातों एवं शहरों में, बगीचों में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

इसका उपयोग कब्ज निवारक औषधि के रूप में किया जाता है। कब्जियत की स्थिति में आधा ग्लास पानी में आधा नींबू निचोड़कर उसमें नमक एवं गोलकी का मिश्रण मिलाकर खाली पेट लगभग एक सप्ताह तक पीने से फायदा होता है। नींबू पानी पीने से मोटापा दूर होता है या कम होता है। अनपच की स्थिति में नींबू का रस पानी के साथ मिलाकर पीने से लाभ होता है। यह जानकारी सुन्दर पहाड़ी प्रखण्ड के चन्दना पंचायत में डॉ. विश्वनाथ पाण्डेय ने साक्षात्कार के क्रम में दी।

ताजा नींबू का रस निकालकर नाक में कुछ बूंद टपकाने से नाक से खून निकलने की समस्या में फायदा करता है। बिशुनपुर प्रखण्ड के वैद्य श्री राजेन्द्र उराँव ने बतलाया कि बाल झड़ने एवं बालों में रूसी होने पर एक भाग नींबू का रस दो भाग नारियल तेल दोनों को मिलाकर बालों की जड़ों में एक सप्ताह तक दिन में दो बार करके मालिस करने से ठीक होता है। यह पेटदर्द एवं वमन में भी लाभकारी है।

नागफनी

वानस्पतिक नाम : ओपूनसिया फाइलोक्लेड

यह बालू पर आसानी से उगने वाला लम्बा काँटेदार गोल पौधा होता है। इसका तना चिपटा होता है। इसका पूरा तना चार–पाँच छह की संख्या में नुकीला और मजबूत होता है। इसका रंग हरा तथा फूल पीला होता है। इसके तने से ही (जहाँ से ये टूटता है) दूसरी नयी कली के रूप में विकास होता है। यह झारखंड के कंकड़ीली एवं बालू मिट्टी युक्त स्थानों पर, खासकर जंगलों में पाया जाता है। लोग इसे खेतों की मेड़ आदि में भी लगाते हैं।

औषधीय गुण

इसकी टहनी को पीसकर चर्म रोग में लगाने से लाभ होता है। यदि किसी की अँगुली में चोट लगा हो और अंदर ही अंदर पक गया हो, तो ऐसी स्थिति में इसे पीसकर लेप लगाने से वह स्थान ठंडा होकर ठीक होता है। कान दर्द की स्थिति में एक–दो बूंद देने पर लाभ होता है।

नाग साँप

वैज्ञानिक नाम : नाजा–नाजा

नाग साँप काला एवं भूरा विषैला होता है। यह अपने फन के सहारे खड़ा होता है और उस फन में ही विष दन्त होता है जिसके सहारे वह किसी भी व्यक्ति को डंसता है। यह जंगलों, झाड़ियों तथा पुराने खण्डर, घरों में अधिकतर मिलता है। गारु प्रखण्ड में जो अध्ययन क्षेत्र था, साँप बहुत पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

जीवित नाग साँप को मारकर कमर तोड़ दी जाते है। उसके बाद उसे पकड़ कर घर लाया जाता है। फिर सरसों तेल को गर्म करके उसके फन से विष उस तेल में मिलाया जाता है। ऐसा होने से तेल गाढ़ा हो जाता हैं जिससे यह समझा जाता है कि यह तेल अब औषधि के रूप में काम करेगा। फिर उस तेल को गठिया या जोड़–जोड़ में दर्द वाले स्थान पर लगाया जाता है जिससे यह बीमारी ठीक हो जाती है। यह तेल काफी विषैला होता है। लगाने के बाद हाथ अच्छी तरह धोने की जरूरत होती है। यह जानकारी गारु प्रखण्ड के वैद्य ने औषधियों की जानकारी देने के क्रम में दी।

पत्थरचटा/ब्रायोफाइलम

वैज्ञानिक नाम : ब्रायोफाइलम पीनेटम

यह शाकीय पौधा है। अधिक पानी को सोखने के कारण पत्ता मोटा, मांसल एवं पूरा चिकना होता है। तना कठोर होता है। पत्ता का रंग हल्का हरा पीला होता है। जो भाग जमीन से सटता है, उसी से नीचे जड़ और फिर तना अर्थात् नए पौधे का निर्माण होने लगता है। यह झारखण्ड के सभी स्थानों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके पत्तों का रस बनाकर पथरी (पेट की पथरी) को गलाने के लिए पिलाया जाता है। यह एक दिन में दो बार दिया जाता है। पत्ते का रस दस्त एवं डायरिया में भी दिया जाता है। सुबह, दोपहर तथा शाम में तीन से चार दिनों तक देने से बीमारी में लाभ होता है।

पलास

वानस्पतिक नाम : व्यूटिया मोनोस्परमा

पलास का पेड़ बड़ा होता है। इस पेड़ का तना रुखड़ा होता है। इसके पत्ते हरे, त्रिकोणात्मक एवं गोलाई लिए बड़े होते हैं। किसी–किसी पेड़ का निश्चित आकार नहीं होता है। एक डंठल में तीन पत्ते होते हैं। मध्यम पत्ता काफी बड़ा होता है। इसका फूल फरवरी महीना से लगना शुरू होता है। फूल का रंग लाल एवं पीला दोनों होता है। पलास फूल की मध्यम पंखुड़ी मुड़ी हुई आकार (तलवार) की होती है। इसके फल चपटे एवं हल्के सफेद, लम्बे होते हैं। बीज छोटे एवं चपटे होते हैं। इस क्षेत्र में अधिकांश लाल फूल वाले पलास के पेड़ दिखाई देते हैं। इसके पेड़ सम्पूर्ण झारखंड के मैदानों, पहाड़ों, जंगलों, एवं सड़कों के किनारे प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

पेचिस के समय इसकी ताजी छाल को थोड़ा पीसकर रस निचोड़कर एक दिन में एक कप तीन बार पीने से ठीक होता है। पलास की छाल को अदरक के साथ पीसकर पिलाने एवं टूटी हुई हड्डी को ठीक से बैठाकर लेप लगाकर बाँस की कमाची से बाँधने पर ठीक होता है। इसके गोंद का प्रयोग खाँसी के समय गले में मालिश करने में तथा फूल का प्रयोग दर्द रोकने के लिए होता है। गर्भावस्था में पेशाब बन्द होने की स्थिति में पलास फूल की कली या फूलों के शर्बत को मिश्री के साथ पीने से ठीक होता है।

पालक (साग)

वानस्पतिक नाम : स्पाइनेसिया ओलेरेसिया

पालक हरा रंग का शाकीय पौधा है। इसका पत्ता मध्यम एवं कोमल होता है पत्तों का रंग हरा होता हैं इसका फूल हल्के सफेद रंग का होता है। फल

एवं बीज छोटे–छोटे होते हैं। पालक साग झारखण्ड राज्य के अतिरिक्त भारत की अन्य कई राज्यों के खेतों में उपजाये जाते हैं।

औषधीय गुण

पालक साग आँखों की दृष्टि ठीक करने में लाभदायक है। पालक साग बराबर खाने से आँखों की दृष्टि ठीक रहती है।

पेचकी

वैज्ञानिक नाम : कोलोकेसीया एसकुलान्टा

यह एक शाकीय पौधा है। इसका डंठल लम्बा होता है जिसमें एक–सा पत्ता होता है। इसका फूल डंठल पीले रंग का होता है। झारखंड की जनजातियों द्वारा इसकी खेती की जाती है। इसका उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है।

औषधीय गुण

इसके कन्द का उपयोग हड्डी जोड़ने के काम में किया जाता है। जानवरों की हड्डी टूटने पर इसके कन्द को पीसकर टूटे भाग में छालकर लेप लगाकर कमाची के सहारे बाँध दिया जाता है। कुछ ही दिनों में मवेशी की हड्डी जुड़ जाती है।

पीपर

वनस्पतिक नाम : पीपर लंगम

यह जमीन की सतह पर बढ़ने वाला पौधा है जो शाकीय होता है। तना गोलाकार होता है। अधिकतर झाड़ियों के आस–पास पाए जाते हैं और झाड़ी से मिलते–जुलते हैं। सूखने पर यह पीले रंग का हो जाता है। यह प्रायः चट्टानों के आस–पास की झाड़ियों में मिलता है। झारखंड एवं अन्य स्थानों में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

यह बवासीर के लिए लाभदायक होता है :–

बवासीर के लिए पीपर का ५ पीस

कोरैया जड़ २०० ग्राम।

गोलमिर्च ७ पीस

मिश्री २० ग्राम।

कूट–पीस कर उसमें गाय का कच्चा दूध मात्रानुसार मिलाकर पीने से बवासीर (पुराना से पुराना) ठीक होता है, लेकिन यह दवा खाली पेट में खानी पड़ती है। यह हृदय रोग, अनपच, कफ, हिस्टीरिया में भी लाभदायक होता है।

पूतरी

वानस्पतिक नाम : क्रोटोन राक्सबरघी

पूतरी एक प्रकार का पौधा है जो मध्यम आकार का झाड़ीदार होता है। इसका पत्ता चौड़ा, बड़ा, लम्बा और हरा होता है। यह झारखंड के पहाड़ों एवं जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

यह मोतियाबिंद में लाभदायक होता है। इसका गध (दूध) जिस आँख में मोतियाबिंद हो गया है उसमें डालने से आँख का गन्दा (किची) निकलता है। ऐसा तब तक किया जाता है जब तक कि आँख की कीची निकलकर खत्म न हो जाय। इसके गध को आँख में डालने के बाद यदि आँख में कीची नहीं आता है तो मोतियाबिन्द ठीक हो गया, ऐसा समझा जाता है।

पिण्डरकोम

यह सदाहरित पेड़ होता है। इसके पत्ते छोटे होते हैं। इसके फल भी छोटे ही होते हैं। यह पेड़ जंगलों, पहाड़ों में बहुतायत में पाये जाते हैं। इसके पेड़ बड़े–बड़े होते है।

औषधीय गुण

पिण्डरकोम फल का उपयोग पेचिस में औषधि के रूप में किया जाता हैं पेचिस होने पर इसके फल को सादा–भून कर खाने से पेचिस रोग में लाभ होता है।

पुदीना

वैज्ञानिक नाम – मेन्था लोनगीफोलिया

यह शाकीय पौधा है। यह पौधा जमीन की सतह पर ही बढ़ता है। फूल छोटे गुच्छों में पत्तों के कक्ष में आते हैं। पत्ते हरे, छोटे, अण्डाकार तथा खुरदुरे होते हैं। यह सुगन्धित पौधा है। थोड़ी जगहों में लगाने पर आस–पास के क्षेत्रों में फैल जाता है। अर्थात यह फैलने वाला पौधा है। यह नमीयुक्त पानी वाले स्थानों में पाया जातो हैं। झारखंड के सभी क्षेत्रों में इसे उगाया जाता है।

औषधीय गुण

पेट को ठीक रखने में पत्ते को पीसकर इसका उपयोग लाभप्रद होता है। इसके रस से मुँह साफ होता है। यह दन्तमंजन का भी कार्य करता है। पत्तों का काढ़ा गठिया का दर्द, अनपच एवं ज्वर में लाभप्रद है। वमन में पुदीना पत्ते के रस को चीनी के साथ देने से ठीक होता है। बिल्ली के काटने पर पुदीना पत्ता को पीसकर लेप देते हैं तथा उसका रस पिलाते हैं।

पीपल

वानस्पतिक नाम – फीकस रेलीजीओसा

यह वृक्ष बड़ा, छायादार और शाखायुक्त होता है। इसके तना में फिसलाहट होती है। पत्ते पतले होते हैं। इसके फल पत्तों के डंठल में ही चिपके रहते हैं। फल के अन्दर छोटे–छोटे दाने होते हैं और पकने पर रंग काला हो जाता है। यह प्रायः हर गाँव में पाया जाता है।

औषधीय गुण

पीपल के पके हुए फल को बारीक पीसकर बराबर मात्रा में शक्कर मिश्रित करके गाय दूध के साथ स्त्री को पिलाने से लगभग दस–पन्द्रह दिनों में प्रसूति और प्रदर में लाभप्रद होता है। पीपल पेड़ की कोमल पत्तियों की कलियों को लेकर ५ गोलमिर्च के साथ मिलाकर पानी के साथ घोलकर तीन से पांच दिन प्रायः खाली पेट पीने से पथरी बीमारी में लाभ होता है।

पाताल बूटी

यह हल्के लाल रंग का छोटा पौधा है। इसका पत्ता कमल फूल की आकृति का होता है। लेकिन आकार में काफी छोटे होते हैं। इसके डंठल एवं पत्ते रवेदार होते हैं। इसमें फल एवं फूल नहीं होते हैं। इसमें केवल एक पत्ता एवं एक सफेद गोलाकार कन्दा होता है। यह कन्दा रसदार एवं हल्का मीठा होता है। यह पौधा केवल बरसात के मौसम में ही उगता है। बाकी मौसम में इसका पौधा जीवित नहीं रहता, लेकिन इसका कन्दा ही जमीन के अन्दर जीवित रहता है। इसका कन्दा बरसात का पानी लगते ही पौधा के रूप में उगने लगता है।

यह पलामू जिले के गारू प्रखण्ड के रूद ग्राम के स्थानीय जंगल में पाया जाता है और औषधि के रूप में इसका प्रयोग उराँव एवं बिरजिया जनजाति के लोग करते हैं।

औषधीय गुण

यह टी.बी. बीमारी में लाभदायक है। पाताल बूटी के कन्दा के साथ कालाबूटी के कन्दा एवं तेजराज, भोजराज, कामराज की जड़ मिलाकर पीसकर तीन महीने तक सुबह खाली पेट में खाने से टी.बी. बीमारी ठीक हो जाती है।

प्याज

वानस्पतिक नाम – एलियुम सेपा

प्याज शाकीय पौधा है जिसका पत्ता लंबा, हरा, पतला एवं बीच में खोखला होता है। यह सफेद और लाल दोनों तरह का होता है तथा जड़ से ही पत्तों का निर्माण होता है। एक पौधे के प्याज से एक प्याज एवं कभी–कभी एक से अधिक भी निर्माण होता है। इसे लोग व्यवसाय हेतु भी लगाते हैं। यह झारखंड के सभी स्थानों पर उगाया जाता है।

औषधीय गुण

सिरदर्द में प्याज को पीसकर तलवा में लगाने से लाभ होता है। सफेद प्याज को सूंघने से नक्सीर खत्म होता है एवं लू लगे व्यक्ति को प्याज खाने का सुझाव दिया जाता है। एक्जिमा से पीड़ित लोगों को प्याज पीसकर लेप लगाने से लाभ होता है। सफेद प्याज का रस आधा पाव और मधु का रस आधा

पाव दोनों को मिलाकर शीशी में भरकर धूप में तीन दिनों तक रखा जाता है। एक चम्मच सुबह–शाम पीने से बलवीर्य की वृद्धि होती है। प्याज के पानी को दाँतों पर मलने से कीड़ा नहीं लगता एवं बहुत सारे रोग ठीक हो जाते हैं।

प्याज को गर्म राख में भूनकर उसका पानी निकालकर कान में डालने से कान दर्द में आराम होता है। प्याज के रस के साथ अदरख का रख मिलाकर खाने से वमन (उल्टी) रुकता है। बारूद से जल जाने से जले हुए स्थान में प्याज का रस डालने पर लाभ होता है। जिस व्यक्ति को तम्बाकू खाने की आदत नहीं है वह यदि गलती से तम्बाकू खा ले तो उस व्यक्ति से तम्बाकू का असर हटाने में प्याज का रस बहुत उपयोगी है। उन्हें दो चम्मच प्याज का रस पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

पृश्नीपर्णी

वानस्पतिक नाम – यूरेरिया पीकटा

पृश्नीपर्णी छोटा वृक्ष है। इसकी ऊँचाई २–४ फीट होती है। पत्र का रंग हरा है। पत्र संयुक्त एवं विभिन्न आकार के गोलाई लिए हुए होते हैं। पत्र के ऊपरी हिस्सों में सफेद रंग की धारियाँ होती हैं। पुष्प छोटे एवं लाल–नीले रंग के होते हैं। फल हरे रंग के ३ से ६ तक संयुक्त रूप में होते हैं। पृश्नपर्णी झारखण्ड इलाके के पहाड़ी, जंगलों, मैदानों एवं नदी के किनारे पाया जाता है।

औषधीय गुण

यह वात रोग एवं हड्डी जोड़ने में लाभदायक होता है। इसके बीज को लगभग २०० ग्राम तेल में भूनकर उस तेल में २०० ग्राम बकरी के दूध के साथ मिलाकर मालिश करने पर ८–१० दिनों में किसी प्रकार का वात रोग ठीक हो जाता है। इसके मूल की छाल का काढ़ा बनाकर तीन सप्ताह तक एक ग्लास करके दिन में दो बार पीने से शरीर के किसी भी अंग की टूटी हड्डी जल्दी जुड़ती है।

परही

यह लता है। यह एक दो मीटर तक लम्बी होता है। इसका पत्ता गोल होता है। यह बरसात के मौसम में इस क्षेत्र के मैदान एवं घर के अगल–बगल में उगता है।

औषधीय गुण

यह बवासीर में लाभदायक होता है। इसके पत्तों को आग में सेंककर बवासीर में लगाने से कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है।

पितौंजी

वैज्ञानिक नाम : पुत्रनजीवा रोक्सबरधी

यह बहुवर्षीय पौधा है। इसका तना मोटा छिलका से भरा हुआ मटमैले रंग का होता है। पत्ता हरा एवं छोटा होता है। इसका फल शुरू में हरा बाद में पीला होता है। फल से छिलका हटाने पर मटमैले रंग का बीज मिलता है। यह झारखंड के जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

किसी भी व्यक्ति को जुलपित्ती अर्थात् पूरे शरीर पर चकता–चकता चमड़ा मोटा हो जाता है तथा शरीर खुजलाता रहता है तो वैसी स्थिति में इसके बीज को छेदकर माला पहना देने से ही ठीक हो जाता है। इस बीमारी में डॉक्टरी इलाज लाभदायक नहीं होता है।

फुटकल

वैज्ञानिक नाम : फीकस इनफेक्टोरिया

इसका वृक्ष बहुवर्षीय, बड़ा, एवं शाखायुक्त होता है। इसके तने छाल से ढंके रहते हैं। डंठल खुरदरा होता है। पत्ते हरे, लंबे, नुकीले होते हैं। इसके फल छोटे–छोटे होते हैं। यह प्रायः सभी जगहों पर पाया जाता है, क्योंकि यह डाली काटकर लगाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके नये कोमल पत्तों को तोड़कर भाँपकर सुखाते हैं। पेट गर्म होने पर इस सूखे पत्ते को माड़ के साथ मिलाकर खाने से ठीक होता है। यह पेचिस में भी लाभकारी है।

बेल

वानस्पतिक नाम : एग्ल मारमेलॉस

बेल का वृक्ष आकार में मध्यम एवं कुछ बड़ा होता है। इसके पत्ते हरे रंग के तथा डंठल में तीन–चार पत्ते संयुक्त रहते हैं। इस वृक्ष के तने एवं शाखाओं में नुकीले काँटे होते हैं। इसके पत्ते सुगंधित होते हैं। फूल छोटे एवं हल्के हरे–सफेद गुच्छों में होते हैं। इसके फल गोलाकार, कच्चा में हरा एवं पकने पर पीला होता है। फल का बाहरी भाग कठोर होता है। भीतरी भाग गुद्देदार, लसलसा एवं खाने में स्वादिष्ट होता है। इसके पेड़ झारखण्ड के शहरों, गाँवों मैदानों तथा जंगलों–पहाड़ों में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

बेल फल को आग में भूनकर इसके मज्जे को मिश्री के साथ मिलाकर दिन में तीन बार क्रमशः १५–२० दिनों तक सेवन करने पर हृदय की दुर्बलता ठीक होती है। इसके फल को मिश्री के साथ दिन में तीन बार ४–५ दिनों तक खाने से अतिसार में फायदा होता है। इसके सेवन से वमन बंद होता है। बेल का शर्बत पीने से पाचन शक्ति में वृद्धि, भूख लगना एवं पेट की शिकायत दूर होती हैं। इसके लसा में पेक्टिन पाया जाता है जो लाभप्रद होता है। आँख की बीमारी में इसके पत्तों का पुलटिश बांधा जाता है। इसके बीज को पीसकर खाने से कब्ज दूर होता है। बेल के पत्ते तथा जड़ में एण्टिबायोटिक तत्व होते हैं।

बबूल

वानस्पतिक नाम : एकेशिया एरेबिका/निलोटिका

यह अत्यंत काँटेदार और आकार में मझोला–बड़ा होता है। इसका तना भूरा–काला और खुरदरा होता है। इसकी पत्तियाँ हरी, छोटी (इमली की पत्ती की तरह) एक जैसी समान एवं संयुक्त होती हैं। इसके फूल अत्यंत सुन्दर, हल्के गुलाबी पीले और सफेद रंग के होते हैं। इसके एक फल में ८–१० चपटे गोलाकार (इमली के बीज जितने छोटे बीज) लंबे बीज होते हैं। इसकी शाखाओं में मजबूत नुकीले, सफेद एक–दो काँटे होते हैं।

इसकी लकड़ी काफी मजबूत होती है। यह झारखण्ड में खासकर नदी, नाला, जंगलों, गाँवों मैदानों एवं झरनों के किनारे प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

बबूल के फल को चीनी के साथ पीसकर सेवन करने से कमजोरी दूर होती है। सूखी खांसी में इसका गोंद प्रयोग किया जाता है। इसका दतुवन दाँतों एवं मसूड़ों के लिए उपयोगी है। १०० ग्राम ताजी छाल ५०० लीटर पानी में उबालकर शेष १०० मी.लि. पानी से कुल्ला करने से मसूड़ा से खून गिरना एवं मुँह के छाले ठीक होते हैं। इसके नरम पत्तों का रस आँखों में डालने से आँखों की पीड़ा दूर होती है।

५०० ग्राम इसके गोंद को १ किग्रा. घी के साथ मिलाकर एक दिन में दो बार क्रमशः १५ दिनों तक खाने से वीर्य की दुर्बलता खत्म होती है। २०० ग्राम गोंद २ लीटर पानी में घोल कर १/२ किलोग्राम मिश्री मिलाकर दिन में दो बार २–३ दिन सेवन से मूत्रमार्ग की तकलीफ (जलन) दूर होती है। बबूल की छाल का काढ़ा तैयार किया जाता है। उतारने से पहले आधा चम्मच कत्था पीसकर मिलाया जाता है। तत्पश्चात् एक मिनट उबालकर छान लिया जाता है। इस काढ़े को दो चम्मच सुबह–शाम पीने से टाइफाइड में लाभ मिलता है। बबूल के कोमल पत्तों को पीसकर मिश्री मिलाया जाता है। इसकी छोटी गोली बनाकर सुबह–शाम ७–१० दिनों तक खाने से प्रमेह या धातु रोग में लाभ होता है।

बहेड़ा

वानस्पतिक नाम : टरमीनेलिया बेलीरीका

बहेड़ा का पेड़ बड़ा होता है। पत्ता हरे रंग का मध्यम आकार का होता है। पलामू जिला के स्थानीय पहाड़ों एवं जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

मुख रोग एवं कृमिरोग में लाभदायक है। मुख रोग एवं पेट में कृमि रोग की स्थिति में इसका फल या छाल का ताजा रस एक ग्लास ४–५ दिन तक एक बार पीने से ठीक होता है। इसके फल का प्रयोग कब्ज में खाने से ठीक होता है। त्रिफला चूर्ण हर्रा, बहेड़ा, और आँवला को साथ मिलाकर बनाया जाता है। इसका फल अनपच, अतिसार आदि में लाभप्रद होता है। यह मस्तिष्क के लिए लाभकारी है। इसके फल का पानी नेत्रों में डालने से जलन दूर होती हैं। यह बवासीर, कुष्ट रोग एवं ज्वर में उपयोगी है। अधपके फल रेचक होते हैं।

बेंग साग/ब्राह्मणी

वनस्पतिक नाम : सेन्टीला एसिआटिका

बेंग साग का पौधा छोटा, पत्ता गोल छाते के आकार का तथा उत्तरयुक्त होता है। इसकी लत्तर गाँठों में होती है। प्रत्येक गाँठ से जड़ें निकलती हैं तथा तीन–चार पत्तियाँ एक साथ जुटी रहती हैं। इसके फल, फूल एवं बीज काफी छोटे–छोटे होते हैं। बेंग साग राँची, गुमला, पलामू तथा अन्य क्षेत्रों के खेतों, बगीचों एवं मैदानों में अधिकतर दलदली भागों में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

पेट की शिकायत में बेंग साग बहुत उपयोगी है। यदि पेट में दर्द हो और पेट की गर्मी से मुँह पर फुंसी आती हो तो इसके पत्ते को पीसकर रोज एक गिलास या आधा गिलास कम से कम तीन दिनों तक पीने से जल्द ही आराम होता है। यह भूख बढ़ाने में सहायक होता है। जॉन्डिस एवं गैस्टिक से पीड़ित व्यक्ति को बेंग साग का पत्ता, फल एवं फूल तथा जड़ की सब्जी बनाकर तीन–चार दिन तक खिलाने से ठीक होता है। झारखण्ड के जनजातीय लोग विशेषकर इसका प्रयोग सब्जी बनाने में तथा चटनी के रूप में करते हैं।

ब्राह्मणी (बेंग साग) के पंचांग के चूर्ण के साथ नीम पत्ता का चूर्ण तथा चरई गोड़वा के चूर्ण को २४ गोलमिर्च के साथ एक–एक चुटकी सुबह–शाम १५–२० दिन तक देने से पानी वाला एक्जिमा ठीक होता है। साथ ही ब्राह्मणी के पंचांग को अकवन जड़ के चूर्ण के साथ बराबर मात्रा में मिलाकर एक–एक चुटकी सुबह–शाम १५–२० दिनों तक सेवन करने से पानी वाले एक्जिमा में आराम मिलता है। पीलिया रोग में भी ब्राह्मणी के पंचांग को प्राथमिक उपचार के रूप में देने से लाभ मिलता है।

ब्राह्मणी के पंचांग का चूर्ण एक–एक चुटकी सुबह–शाम खाली पेट में मधु के साथ लगातार ३० दिनों तक देने से मिर्गी ठीक होती है। सर्दी–ज्वर में बेंग साग के पंचांग का काढ़ा बनाकर २–३ चाय चम्मच सुबह–शाम देने से ठीक हो जाता है। सर्पदंश, भूख बढ़ाने में तथा पीलिया रोग में इसे शर्बत बनाकर पीया जाता है।

बड़ पेड़/बरगद

<u>*वानस्पतिक नाम : फीकस इलास्टीका*</u>

बड़ का पेड़ बहुत विशाल होता है। बड़ पेड़ अपने विशाल आकार को संभालने के लिए शाखा से सहारा लेने के लिए सहायक जड़ (स्तम्भ जड़ें) निकालते हैं। इसके पत्ते हरे रंग के बड़े, मोटे एवं मुलायम होते हैं। इसके फूल नहीं होते हुए भी फूल छोटे–छोटे लाल गोलाकार होते हैं। एक फल में छोटे–छोटे बीज होते हैं। बड़ पेड़ सारे भारत में पाये जाते हैं।

<u>*औषधीय गुण*</u>

बहुमूत्र में बड़ पेड़ की छाल काफी लाभदायक है। लगभग १०० ग्राम बड़ पेड़ की भीतरी ताजी छाल को एक लीटर पानी में उबालकर ३०० ग्राम के लगभग शेष बचाकर इसमें मधु १०० ग्राम मिलाकर दिन में तीन बार करके लगातार एक सप्ताह पीने से बहुमूत्र रोग ठीक होता है। बड़ पेड़ की लटकती हुई जड़ों के अग्रभाग को लेकर छः गुणा पानी में एक चौथाई काढा तैयार करके सुबह–शाम दो से तीन चाय चम्मच ३० दिनों तक देने से मधुमेह रोग में लाभदायक होता है।

बड़ का दूध कपड़ा में लगाकर गलसुआ (पम्पस) में पट्टी बांधने से ठीक होता है। बड़ के पके फल का चूर्ण बनाकर आधा–आधा चाय चम्मच सुबह–शाम मधु या गुड़ के साथ ७–१० दिन तक खाने देने से अतिस्राव में लाभदायक होता है। बड़ वृक्ष की कोमल जटाओं को जलाकर राख बनाकर थोड़े पानी के साथ देने से गर्भावस्था में उल्टी में लाभदायक होता है। बड़ के पके फल का चूर्ण आधा से एक चाय चम्मच दिन में तीन बार खाने से गर्भावस्था में अतिसार में लाभदायक होता है .

बेर

<u>*वैज्ञानिक नाम : जीजीफस माउरीटीआना*</u>

बेर एक मध्यम आकार का झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसकी संपूर्ण शाखाओं पर काँटे होते हैं। पत्ते छोटे एवं गोलाकार (बड़ी बेर के पत्ते के समान) होते हैं। पत्ते का ऊपरी भाग हरा होता है तथा निचला भाग हल्का सफेद होता है। फूल छोटे, हल्के हरे, सफेद रंग के होते हैं। फल हरा रंग का, गोलाकार एवं पकने पर लाल–पीला होता है। बेर का पेड़ पूरे झारखण्ड के मैदानों, गाँवों खासकर जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

बेर के दाने को दूध के साथ मिलाकर एक माह तक दिन में दो बार खाने से पुरुष की मर्दानगी बढ़ती है। बेर की जड़ को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। कुत्ते के काटने पर पीपल की छाल, चिरचिटी की जड़, गुड़, गोलकी और बेर की जड़ को मिलाकर, पीसकर गोली बनाकर १५ दिनों तक खाने से लाभ होता है। कुत्ता काटे हुए व्यक्ति को गुड़ खिलाने पर तीन दिन के बाद यदि उस व्यक्ति की लार टपकने लगती है। तो उस व्यक्ति पर विष होने की पहचान की जाती है। यह जानकारी गम्हरिया के मुखिया छोटू सिंह मुण्डा द्वारा साक्षात्कार के दौरान प्राप्त की गई।

परहेज – कांसा थाली में कुछ दिनों तक भोजन खाना वर्जित है एवं एक से तीन दिन तक नदी पार नहीं करना है। ऐसा लोगों का विश्वास है।

महिलाओं के श्वेत प्रदर में बेर फल के चूर्ण को गुड़ के साथ हलुआ बनाकर १–१ चम्मच सुबह–शाम १२–१५ दिनों तक खाने से ठीक होता हैं शरीर का ताप कम करने के लिए बेर के कोमल पत्तों को कूटकर उसे पानी में डालकर खूब मंथन करने पर निकले फेन को नाभि पर लगाने से फायदा होता है।

बादामगिरी

बादामगिरी बादाम आकार जैसा फल है। इसको बड़ा बादाम भी बोला जाता है। इसका आकार–प्रकार रंग–रूप सामान्य बादाम जैसा ही है। अन्तर इतना ही है कि सामान्य बादाम से इसका आकार बड़ा होता है। बादाम के जैसा ही दो या तीन हल्का रंग का दाना पाया जाता है। यह दुकान में खरीदने पर पाया जाता है।

औषधीय गुण

कब्ज भगाने एवं पैखाना सामान्य रूप में करने के लिए लाभदायक होता है। इसका तीन–चार दाना ४–५ दिन तक सुबह खाली पेट में खाने से कब्ज रोग ठीक होता है और पैखाना सामान्य रूप से होने लगता है।

बबला कन्दा

यह एक प्रकार की हरी लती है। इसके पत्ते पालक के पत्ते जैसे होते हैं। फूल सुगंधित एवं गुच्छों में पाए जाते हैं। इसका रंग नीला होता है। इसका

कन्दा गोल होता है। यह झारखण्ड के समस्त पहाड़ों एवं जंगलों में बरसात के दिनों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

यह लकवा बीमारी के लिए लाभदायक होता है। इसके साथ महाकाल का कन्दा, अन्तमूल की जड़ को पीसकर लकवा के ग्रसित अंग की एक महीने तक मालिश करने से लाभ होता है।

बेलंजन

वैज्ञानिक नाम : कोरडिया मिक्स

यह मध्यम आकार का पेड़ है। इसका पत्ता पलास के पत्ता के समान गोल एवं रुखड़ा होता है। इसका पेड़ चिमड़ होता है। यह पेड़ झारखंड के जंगलों एवं पहाड़ों में पाया जाता है। अध्ययन के क्रम में यह गारु प्रखण्ड के रूद गाँव के पास पहाड़ी वनों में पाया गया जो अल्पमात्रा में है। यह लुप्त होने वाली औषधियों में से एक है।

औषधीय गुण

इसका उपयोग वात की बीमारी, मासिक गड़बड़ी में किया जाता है। बेलंजन की छाल, खैर के छोटे पौधे की जड़, परसौती परास की जड़, इन तीनों को मिट्टी के बर्तन में पानी देकर पकाया जाता है। इसको तब तक पकाया जाता है जब तक पकने के लिए दिया हुआ पानी आधा न हो जाय। तैयार किये गये काढ़े को प्रत्येक दिन खाली पेट में सुबह आधा कप करके एक महीना लगातार पीने से धात की बीमारी एवं स्त्रियों की मासिक धर्म की गड़बड़ी ठीक हो जाती है।

निषेध – धात एवं मासिक धर्म से पीड़ित को अण्डा, माँस, मछली, वसायुक्त पदार्थ एवं शराब पीना वर्जित है। इसके साथ में ऊपरी नमक और मिर्च खाना भी निषेध है।

भम आँवला

यह एक छोटा हरे रंग की घास है। इसके पत्ते इमली के पत्ते जैसे छोटे–छोटे होते हैं। इसके फल पत्ते में छोटी–छोटी लाइन (पंक्ति) में लगे होते है। यह मैदानों, खेतों में, बगीचों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

यह धातु रोग में लाभदायक है। इसकी जड़ को पीसकर घोल बनाया जाता है और इसे खाली पेट में पिलाने से धातु रोग ठीक हो जाता है।

भूमिजाम

वैज्ञानिक नाम : प्रेमना हरबेसिया

भूमिजाम का पत्ता मयूर चूदियों के समान बड़ा एवं मुलायम होता है। एक पौधे में सिर्फ चार या पाँच ही पत्ते होते हैं। जो चौड़े एवं गोल होते हैं। फूल हल्के सफेद एवं छोटे होते हैं। इसके पत्ते जमीन में सटे होते हैं। इसकी जड़ गाँठों में होती है। यह प्रायः बरसात के दिनों में जंगलों, पहाड़ों एवं मैदानों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसकी जड़, जो गाँठों में होती है, औषधि के रूप में प्रयुक्त होती है। इसकी जड़ को करंज तेल, कुजूर तेल, डोरी तेल एवं तेलमिन तेल के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है तथा प्रभावित अंग में मालिश करने से गठिया रोग (वात रोग) में लाभ पहुँचता है।

भूमिजाम की जड़ और महाकाल की जड़ को पीसकर मालिश करने से भी गठिया रोग में लाभ होता है। इसकी जड़ को पीसकर पिलाने से साँप का विष एवं बिच्छू का विष जहाँ का तहाँ रुक जाता है, आगे बढ़ता नहीं है।

भुखला काँटा

स्थानीय नाम : भुखला काँटा

भुखला काँटा एक प्रकार का छोटा पौधा है। इसकी ऊँचाई १–२ फीट तक होती है। इसके पत्ते छोटे, हरे एवं काँटेदार होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। इसके फल एवं बीज छोटे होते हैं। इसके संपूर्ण भाग में छोटे, नुकीले काँटे होते हैं। इसका बाह्य प्रयोग होता है।

गुमला जिले एवं प्लामू जिले के स्थानीय पहाड़ों एवं जंगलों में यह पाया जाता है। बरसात के बाद खेतों एवं बगीचों में भी पाया जाता है।

औषधीय गुण

एक्जिमा के इलाज के लिए यह लाभदायक है। भुखला काँटा के सूखे हुए बीजों को करंज तेल के साथ मिलाकर पीसकर एक्जिमा से प्रभावित अंगों में ८–१० दिन तक लगाने एवं हल्की मालिश करने से ठीक हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी जड़ को पीसकर घाव में लगाने से लाभ होता है। इसका प्रयोग केवल बाहरी उपयोग के लिए किया जाता है।

भतुआ साग

वानस्पतिक नाम : चिनोपोडियम अलबम

यह एक प्रकार का पौधा है। इसका तना हल्का मोटा होता है। पत्ता छोटा और चपटा होता है। पत्ता हरा होता है। यह खेतों में खासकर बरसात के दिनों में आसानी से पाया जाता है। गाँव के लोग इसे भापकर–सुखाकर रखते हैं।

औषधीय गुण

इसे सब्जी के रूप में खाया जाता है। भतुआ साग को सब्जी बनाकर, जिसमें मिर्च–मसाला न पड़ा हो, एक हफ्ते तक इस्तेमाल करने से हाथ–पैर सूखना तथा उल्टी इत्यादि में लाभ होता है।

भेलवा

वानस्पतिक नाम : सीमीकारापस एनाकारडियम

भेलवा का पेड़ बड़ा होता है। इसका पत्ता बड़ा, मोटा, हरे रंग का और कठोर होती है। फल का सम्पूर्ण आकार कच्चावस्था में हरा रहता है। इसके फल की बनावट एक विशेष प्रकार की होती है। फल के अग्रभाग में मांसपेशी होता है और अंतिम छोर में इसके बीज होते हैं। इसका फल पकने पर फल के अग्रभाग की मांसपेशी पीले एवं बीज काले रंग के हो जाते हैं। इसके फल की पीली मांसपेशी खाने में मीठे लगती है। भेलवा पूरे झारखंड के पहाड़ों, मैदानों एवं जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

भेलवा कैंसर एवं गठिया वात में लाभदायक होता है। भेलवा बीज के अग्रभाग में लगी हुई मांसपेशी को पकने के उपरान्त सुखाकर इसका ५००

ग्राम चूर्ण बना लिया जाता है। इस चूर्ण को एक पाव दूध के साथ तीन चम्मच मिलाकर दिन में तीन बार तक करके एक माह तक खाने से कैंसर ठीक होता है। गठिया वात रोग में भेलवा बीज में एक प्रकार का काला तेल पाया जाता है। इस काला तेल से पैर की सभी अंगुलियों के नाखून में पॉलिश करने से गठिया रोग की वृद्धि रुक जाती है।

अनिल कुमार माण्डी, इस शोध परियोजना के अस्थायी शोध अन्वेषक, ने बतलाया कि १६८८ के आस–पास वे गठिया रोग से पीड़ित थे। डॉक्टरी इलाज से फायदा नहीं होने पर अपने प्रखण्ड चाकुलिया के वैद्य के द्वारा दी गई जड़ी–बूटी से इन्हें पूर्ण लाभ मिला। उन्होंने भेलवा तेल की पॉलिश नाखून में की थी। जिससे अभी तक ये ठीक हैं। भेलवा बीज के साथ अग्निजड़ पशुओं की गोलाकुंडी बीमारी में फायदेमंद हैं। पशुओं के मुख के अंदर सूजे हुए स्थान पर २–३ बार भेलवा तेल डालने से छुटकारा मिलता है। त्वचा के छाल रोग में भेलवा का बीज और काजू गोल बराबर मात्रा में लेकर करंज तेल में पकाकर दिन में २–३ बार पंख द्वारा लगाने से ठीक होता है।

मैदा

वानस्पतिक नाम : लिटसीया पोलिएन्था

मैदा साधारण वृक्ष होता है। इसका पत्ता हरे रंग का, लंबाकार होता है। चौड़ाई की तुलना में पत्तों की लंबाई तीन गुणा अधिक होती है। फूल हल्का पीला, सफेद रंग का होता है। फल छोटे आकार का होता है। मैदा वृक्ष गुमला जिले एवं पलामू जिले के स्थानीय जंगलों एवं पहाड़ों में पाया जाता है। गुमला जिले के चिंगरी ग्राम में भी इसके पेड़ को लगाया गया है।

औषधीय गुण

मैदा पेड़ की छाल हड्डी जोड़ने में लाभदायक है। आदमी एवं किसी भी प्रकार के मवेशी एवं जानवर की हड्डी टूटने पर इसकी ताजा छाल को महीन पीसकर पट्टी बांधने से हड्डी शीघ्र जुड़ने लगती है। मैदा की छाल पीसकर लगाने से कनपड़ा (पम्पस) में लाभ होता है।

महुआ

वनस्पतिक नाम : मधुका ब्यूटीरेसिआ

महुआ का पेड़ विशाल एवं छायादार होता है। पत्ता हल्का, पीला एवं खुरदरा होता है। फूल गिरने के बाद पंखुड़ी बच जाती है। पके फल के बीज को सुखाने के पश्चात् चक्की में पीसने से जो तेल प्राप्त होता है उसे डोरी तेल के नाम से जानते हैं। महुआ का पेड़ प्रायः झारखण्ड के जंगलों, गाँवों एवं देहातों में अधिकतर पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके फूल का प्रयोग एक्जिमा, घाव आदि में किया जाता है। महुआ का दारू बनाने के पश्चात् शेष महुआ (गोड़ा) को पीसकर १५ दिनों तक लगातार लगाने से घाव ठीक होता है। छिलका काढ़ा (क्वाथ) खुजली, मसूड़ों से खून आने पर, फोड़ों पर लगाया जाता है। पत्ते का भस्म घी में मिलाकर जले जख्मों पर लगाने से लाभ होता है। महुआ फूल खांसी एवं श्वास नली की सूजन में लाभकारी होता है। फूल में शीतलता, पौष्टिकता के साथ बैक्टीरिया नाशक गुण होते हैं। महुआ के तेल, करंज के तेल तथा सरसों के तेल को गाय के घी से मिश्रित किया जाता है। इस मिश्रण को मथकर प्राप्त पदार्थ को छाती दर्द, निमोनिया तथा ठण्डक के लिए उपचार के रूप में सात दिनों तक छाती पर लगाया जाता है। महुआ के बीज से बना डोरी तेल शरीर को ठण्डा रखता है। इसे खासकर गर्मियों में व्यवहार किया जाता है। महुआ और तिल को पीसकर बाँधने से हड्डी का दर्द ठीक होता है। योनि संकोचन में महुआ पेड़ की छाल के चूर्ण को पोटली बनाकर योनि के अंदर रखने से ठीक होता है। फटे या दरारयुक्त त्वचा पर महुआ बीज का तेल लगाने से ठीक होता है।

मुनगा

वानस्पतिक नाम : मोरिनजा ओलिफेरा

मुनगा का पेड़ बड़ा, छोटा एवं मझोले तीनों प्रकार का होता है। इसकी शाखाएँ कमजोर एवं मुलायम होती हैं। इसके पत्ते गोल एवं छोटे–छोटे होते हैं। इसका फूल हल्का पीला एवं सफेद रंग लिए गुच्छों में होता है। इसका फल लगभग एक फीट लंबा एवं शिरायुक्त होता है। जिसे सोटी (जोकी) कहते

हैं। इसके वृक्ष गाँवों एवं शहरों के बगानों आदि में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

इसकी जड़, पत्ते एवं फल तीनों औषधि के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके पत्तों का साग खाने से रक्तचाप एवं फल की सब्जी खाने से रतौंधी एवं हृदय की बीमारी में लाभ होता है। मुनगा की छाल को पीसकर थोड़ा नमक और चूना मिलाकर माथा में लगाने से माथा दर्द ठीक होता है।

गम्हरिया के मुखिया छोटू सिंह मुण्डा के अनुसार – इसके पत्तों को १/४ भाग पानी में मिलाकर पीने से ब्लड प्रेशर में लाभ मिलता है। इसकी जड़ की छाल को महीन पीसकर बनाये गये लेप को सोते समय लगाने से अण्डवृद्धि (हाइड्रोसिल) में लाभ मिलता है। शरीर में फीताकृमि की अवस्था में इसकी छाल का चूर्ण एवं एक–दो चुटकी थोड़ा गुड़ मिलाकर गोली बनायी जाती है। सुबह एवं रात्रि में सोने से पहले ५ दिनों तक देने से ठीक होता है। गर्भपात के भय में इसकी जड़ की छाल एवं १२ गोलमिर्च को पीसकर मिश्रण बनाया जाता है तथा इस मिश्रण का पेट पर लेपन किया जाता है। इसके पत्ते को उबालकर खाने से हड्डी मजबूत होती है। सर्दी होने पर इसकी फल की सब्जी खाने से फायदा होता है।

महाकाल

यह लती है। इसकी पत्ती एवं लती हरे रंग की होती है। इसका पत्ता कुंदरी पत्ता जैसा होता है। इस लती की ऊँचाई १०–१५ फीट तक होती है। यह काफी विषैला होता है। झारखण्ड के जंगलों एवं पहाड़ों में एवं गारु प्रखण्ड में भी पाया जाता है।

औषधीय गुण

शरीर दर्द में यह लाभदायक होता है। महाकाल की जड़ के साथ बिच्छू काल की जड़ को मिलाकर करंज तेल में पकाकर शरीर में लगाने से दर्द ठीक होता है।

सावधानी–इसकी जड़ विषैली होती है। हाथ–पैर को अच्छी तरह से, दवा का प्रयोग करने के बाद धो लेना चाहिए। गारु प्रखण्ड के लालदेव भगत द्वारा यह जानकारी प्राप्त हुई है।

मयूर चूंदिया

वानस्पतिक नाम : इलिफेटोपसइस्केबर

यह एक प्रकार की घास है। इसका पत्ता मूली के पत्ते के समान होता है। पत्ता ५–६ की संख्या में होता है। पत्ता रुखड़ा होता है। यह मैदान में एवं बगीचों में भी पाया जाता है।

औषधीय गुण

इस पौधे का उपयोग गर्भपात कराने में किया जाता है। जिस स्त्री को गर्भपात कराना होता है, उस स्त्री की योनि में मयूर चूंदिया की जड़ को (५ या ७ की संख्या में एक ईंच लंबा काटकर सीधी जड़ को धागा से ही बाँधकर) डालकर इसे गर्भाशय तक डाला जाता है, जिससे आधा से एक घंटे के अंदर गर्भपात हो जाता है। जानवर के शरीर में यदि घाव हो तो मयूर–चूंदिया को उखाड़कर जानवर के घाव में छुआकर उसे फेंक दिया जाता है। इससे घाव धीरे–धीरे सूख जाता है।

मर्दराज, भोगराज एवं तेजराज

मर्दराज – यह एक छोटा पौधा है। इसका पौधा खजूर के छोटे पौधे के समान होता है। इसके पौधे में तीन या चार पत्ते होते हैं। इसका फूल छोटा एवं पीले रंग का होता है। यह झारखंड के जंगलों एवं बगीचों में पाया जाता है। इसका कंद औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है।

भोगराज

वैज्ञानिक नाम : प्यूसीडेनम धाना

यह हरे रंग का पौधा होता है। इसका पत्ता मध्यम आकार एवं हरे रंग का होता है। जिसपर सफेद एवं कोमल रोयें होते हैं। यह झारखण्ड के पलामू जिले के जंगलों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसका कंदा औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। सर्प विष में भोजराज की जड़ को पीसकर पिलाने से ठीक होता है।

तेजराज

वानस्पतिक नाम : पायनोसायक्ला ग्लायका

यह झाड़ीदार पौधा होता है। इसका पत्ता मिर्च के पत्ते के समान छोटा

एवं हरे रंग का होता है। इसमें छोटे–छोटे फल लगते हैं। पकने पर इसका फल लाल रंग का होता है। इसकी जड़ झाड़ीनुमा होती है। यह पलामू जिले के गारु प्रखण्ड के जंगलों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसकी जड़ को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। मर्दराज, भोगराज का कंदा एवं तेजराज की जड़ में औषधीय गुण हैं। इन तीनों का मिश्रण पुरुष मर्दानगी में उपयोगी होता है। इन तीनों को पीसकर खाली पेट में लगातार एक सप्ताह तक खाने से पुरुष मर्दानगी बढ़ जाती है।

निषेध – खट्टा, तीता एवं वसायुक्त पदार्थ खाना वर्जित है।

मूली

वानस्पतिक नाम : रेफेनस सेटीभस

मूली का पौधा छोटा होता है। इसका पत्ता हरा, लंबा एवं किनारे थोड़ा ऊँचा–नीचा होता है। मूली का पौधा फूल निकलते समय एक मीटर तक ऊँचा होता है। इसका फूल सफेद रंग का, छोटा होता है। इसका फल मिर्च आकृति जैसा हल्के रंग का होता है। बीज छोटे एवं गोल होते हैं। मूली की खेती झारखण्ड राज्य के अतिरिक्त अन्य कई राज्यों में की जाती है।

औषधीय गुण

मूली कर्णशूल बीमारी में लाभदायक है। कर्णशूल बीमारी में मूली के पत्तों का रस ४–५ बूंद कान में डालने से ठीक होता है।

मेहंदी

वनस्पतिक नाम : लावसोनिया इनरमीस

मेंहदी एक कंटीले और झाड़ीदार छोटा पौधा है। इसका पत्ता छोटा एवं हरे रंग का होता है। मेहंदी की ताजी शाखा को गाड़ने से जिन्दा होकर नया पौधा तैयार हो जाता है। इसकी पत्तों की विशेषता यह है कि इसमें हल्का लाल, पीले रंग का रस होता है। मेहंदी पूरे झारखंड में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के बगीचों में पायी जाती है।

औषधीय गुण

मेहंदी मूत्र–मार्ग की जलन, मूत्र का रंग ठीक करने एवं पीलिया बीमारी

में लाभदायक है। मेहंदी के ५० ग्राम ताजे पत्ते को पीसकर एक ग्लास पानी घोलकर सुबह खाली पेट में पीने से मूत्रमार्ग की जलन एवं मूत्र का पीलापन तत्काल ठीक होता है। मेहंदी के लगभग १०० ग्राम ताजा पत्ता को थोड़ा मसलकर आधा लीटर पानी में रात भर भींगने दिया जाता है और सुबह खाली पेट में दो दिन पीने से पीलिया बीमारी ठीक होती है। सिर भारी एवं हल्का सिरदर्द महसूस होने पर मेहंदी की जड़ का चूर्ण मटर के गोली के बराबर पानी के साथ सुबह–शाम खाने से आराम होता है।

मोर का पंख

मोर का पंख मोर से ही प्राप्त किया जाता है। यह लंबा एवं गहरे रंग का होता है जो कि बीच में सफेद डंठल जैसा होता है। इसके ऊपरी छोर पर एक गोल हरे एवं काले रंग के आँख के जैसा दिखाई पड़ता है। यह प्रायः घने जंगलों में पाये जाने वाले मोर से प्राप्त होता है।

औषधीय गुण

जब बच्चों में उल्टी–कै या दस्त हो रहा हो तो मोर पंख को जलाकर थोड़ा–सा चटाने पर कै या दस्त ठीक हो जाता है।

मकचूंद

वानस्पतिक नाम : यूक्लीपटा अल्बा

इसका पेड़ बड़ा होता है, तना शाखाओं में बंटा होता है। पत्ते हरे, रुखड़े, बड़े एवं चपटे होते हैं। फल लंबे एवं हल्के पीले रंग के होते हैं। इसका फूल पीले रंग का होता है। इसके पौधे अपने आप से उगते हैं। यह झारखण्ड के पहाड़ों एवं जंगलों पर पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके फूल को तोड़कर पानी में फुलाया जाता है और पानी से निकाल कर चटनी जैसा बनाया जाता है। आधा चम्मच से भी कम खाने से स्वप्नदोष बीमारी ठीक होती है। यदि पेट में गर्मी के कारण मुँह में फुसी आदि होती है तो इसके फूल को सुखा लेते हैं। पानी में फुलाकर इसे पीसा जाता है और १/४ चम्मच गुड़ के साथ देने से पेट की गर्मी ठीक हो जाती है। मकचूंद के

फल का चूर्ण तीन अंगुली से चुटकी लेकर फाँकने के बाद शीतल जल या माड़ पीने से गर्मी के कारण होने वाले सरदर्द के लिए लाभप्रद है।

यूकलिप्टस

वानस्पतिक नाम : युकलिप्टस ग्लोबूल्स

इसका पेड़ अधिक लंबा होता है। तना कम शाखाओं में बंटा होता है। यह सीधा बढ़ने वाला पेड़ है। इसका तना काफी कठोर एवं मोटा होता हैं। इसकी छाल सफेद रंग लिए चिकनी होती है। इसका फूल सफेद और काला रंग लिए होता है। इसके फूल छोटे एवं गुच्छों में होते हैं। बीज छोटे आकार के कत्थई रंग के होते हैं। पेड़ सुगंधित होता है। इसके पेड़ प्रायः झारखण्ड राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों में भी पाए जाते हैं। इसके पेड़ विशेषकर वन विभाग द्वारा लगाए जाते हैं।

औषधीय गुण

इसके पत्ते से रस निकालकर पेट दर्द में आधा कप पानी के साथ दो बूंद रस मिलाकर पीने से आराम होता है। इसके पत्ते को पीसकर सर्दी–जुकाम में देने से ठीक होता है। यूकलिप्टस तेल का भी औषधि में प्रयोग होता है।

रेंगनी

वानस्पतिक नाम : आर्गीमोन मैक्सीकाना

रेंगनी का पौधा झाड़ीदार होता है। इसके पत्ते का किनारा कटा हुआ होता है। इसके पौधे चिकने होते हैं। इसके तने को तोड़ने पर गन्ध निकलती है। पूरा पौधा हल्का हरा एवं फूल पीले रंग के होते हैं।

औषधीय गुण

अण्डकोष वृद्धि में रेंगनी की ताजी जड़ लगभग १५ ग्राम या सूखी जड़ १० ग्राम, ७ गोलमिर्च के साथ मिलाकर १/२ ग्लास पानी में घोलकर सुबह सात से १० दिन तक पीने से लाभ होता है। इन्फ्लुएन्जा में रेंगनी का पंचांग ३ गोलमिर्च के साथ काढ़ा बनाकर दो–दो चाय चम्मच सुबह–शाम ५–७ दिनों तक खाने से फायदा होता है। दाँत दर्द में भी इसका प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है।

रमपावन

यह लतर की तरह एक पौधा है, पर इसका तना दतुवन के समान मोटा होता है। दतुवन के लंबाई के बराबर में इसमें गांठें होती है। इसके पत्ते बड़े एवं गोल होते हैं। इसके सम्पूर्ण भाग में छोटे–छोटे कांटे होते हैं। यह जंगलों एवं पहाड़ों में बहुत संख्या में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके तने का उपयोग धात की बीमारी में किया जाता है। कच्ची और सूखी दोनों ही अवस्था में इसके तने का उपयोग किया जाता है। रमपावन के तने के साथ सफेद परास, अंतरंग, सफेद सेम्बल, लौह फूलिया, चावल कन्दा, जड़ी, गुडी पेड़ की छाल, सिजंगा छाल, काला जीरा, तोलन के रूप में (दुकानों में पायी जाने वाली सामग्री) दालचीनी, कबाब चीनी, जेठी मधु, अश्वगंधा, नारेश्वर, नाकेश्वर, कमलगोटा, किशमीश, हेमसागर कन्दा एवं मिश्री को साथ में पीसकर गोली के समान बनाकर खाली पेट सुबह–शाम ३० दिनों तक लगातार खाने से धात की बीमारी में लाभ पहुँचता है।

रेशम कीड़ा

रेशम कीड़ा अंडाकार आकृति में बंद रहता है। अंडाकार कोकुन में से रेशम कीड़े को काटकर निकाला जाता है। इस कीड़े को मिर्गी बीमारी के इलाज के लिए प्रयोग किया जाता है। मिर्गी बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को रेशम के इस कीड़ा को खिलाने से मिर्गी बीमारी ठीक हो जाती है।

लहसुन

वानस्पतिक नाम : एलीयुम सेटीभम

लहसुन एक शाकीय पौधा है। इसके पत्ते लंबे, हरे एवं सीधे होते हैं। इसका कन्द जमीन के नीचे पोट के रूप में (पन्द्रह से बीस लहसुन एक में) पाया जाता है। इसका साग ऊपर कई भागों में विभक्त होकर गुच्छों में सजे होता है। यह झारखण्ड के लगभग सभी स्थानों में पाया एवं उगाया जाता है।

औषधीय गुण

मवेशियों के सन्निपात की बीमारी में इसका प्रयोग किया जाता है। नमक, लहसुन, गोलमिर्च आदि को पीसकर सरसों तेल के साथ दो या तीन बार

मवेशी को खिलाने से आराम मिलता है। दो–चार पोट लहसुन को तेल में गरम किया जाता है। जब लहसुन पूरी तरह जलकर काला हो जाता है। तब उस गरम तेल से बदन दर्द, पैर दर्द, सर्दी, खांसी और जुकाम में मालिश करने पर आराम मिलता है। दो पोट लहसुन लेकर उसका रस निकाला जाता है। उस रस को दाँत दर्द में डाला जाता है जिससे दाँत दर्द में आराम मिलता है। गैस्टिक के मरीज के लिए भी लहसुन लाभदायक है। गैस्टिक से पीड़ित व्यक्ति यदि सुबह खाली पेट में लहसुन के पोट के दो–तीन लहसुन चबाकर खाने के बाद पानी पी ले तो गैस्टिक की शिकायत दूर होती है।

नाड़ी को बल देने के लिए तीन छिले लहसुन को तीन चाय चम्मच सरसों के तेल में पकाकर तेल को हाथ की दस और पैर की दस अंगुलियों के नाखून पर लगाते हैं। १०–१५ मिनट में नाड़ी को बल मिलने लगता है। उच्च रक्त चाप में लहसुन और अदरक बराबर मात्रा में में पीसकर गुड़ में पाक बनाकर एक चम्मच सुबह खाली पेट में देने से ठीक होता है।

लरंग लता

स्थानीय नाम : बायहां लत्तर

लरंग एक प्रकार का लत्तर है। इसका पत्ता हरे रंग का, खुरदरा होता है। इसका फूल छोटा एवं लाल रंग का होता है। फल ऐंठा हुआ होता है। इसका पत्ता मध्यम आकार का होता है। यह झारखण्ड के गुमला एवं पलामू जिले के स्थानीय पहाड़ों एवं जंगलों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

लरंग लत्ता सभी प्रकार के दर्द में लाभदायक होता है। लरंग की सम्पूर्ण लत्तर को महाकाल की जड़ के साथ मिलाकर पीसकर शरीर के किसी भी अंग के दर्द में मालिश करने से आराम देता है।

लालदूधी

वानस्पतिक नाम : यूफोरबिया हींटा

लाल दूधी एक वर्षीय पौधा है। इसकी शाखाओं पर पीला रोम पाया जाता है। पत्ते आमने–सामने जोड़े में गहरे हरे तथा कथई रंग के होते हैं। फूल सफेद अत्यंत छोटे, पत्तों के कक्ष में लगे होते हैं। बीज तिकोने, लाल,

भूरे रंग के होते हैं। यह पौधा सभी मैदानी क्षेत्रों में, तलहटी वाले क्षेत्रों तथा बेकार स्थानों में उग जाता है।

औषधीय गुण

सम्पूर्ण पौधा को सुखाकर औषधि के रूप में काम में लाया जाता है। लालदूधी में हृदय एवं श्वास क्रिया को मंद करने का गुण है। यह श्वास नलियों को शिथिल करके आराम पहुँचाती है। बच्चों के कृमिरोग, उदर रोग, खांसी, दमा में उपयोगी है। इसके सेवन से स्त्रियों के स्तन में दूग्ध की मात्रा बढ़ती है। दूधी एण्टीवैक्टीरियल एवं क्षय रोग–नाशक भी है। इसकी जड़ें वमन को रोकती हैं, पर अधिक सेवन से पेट में जलन एवं मचली (उल्टी) हो जाती है। इसका सफेद रस मस्सों पर लाभ करता है।

लाजवन्ती (छुईमुई)

वनस्पतिक नाम : माइमोसा पुडीका

लाजवन्ती का पौधा छोटा होता है। इसकी शाखाओं पर छोटे–छोटे कांटे होते हैं। पत्ता बहुत छोटा, हरे रंग का संयुक्त होता है। इसका फूल हल्के लाल गुलाबी रंग का रोएंदार होता है। फल छोटा एवं चपटा होता है। इसे छूने से पत्ते झुककर सिमट जाते हैं और कुछ समय बाद पुनः अपनी अवस्था में फैलकर आ जाते हैं। यह संपूर्ण झारखण्ड के झरनों, मैदानों, खेतों एवं नदी के किनारे पर पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसका उपयोग सर्पदंश, कान दर्द और साँप तथा बिच्छू के काटने पर इलाज रूप में होता है। साँप एवं बिच्छू के काटने पर इसकी जड़ को पीसकर पिलाने से लाभ होता है। कान दर्द की अवस्था में इसकी जड़ को पीसकर उसका रस कान में दो बूंद डालने से तुरंत फायदा पहुँचता है।

सर्पगंधा

वानस्पतिक नाम : राउलफियासरपेनटिना

यह बड़े शाकीय आकार का पौधा होता है। इसके पत्ते हरे, अंडाकार, मांसल एवं चिकने होते हैं। इसके फल गोल लाल तथा कथई रंग लिए होते

हैं। तने हरे, मुलायम होते हैं। यह झारखंड के अलावा भी अन्य क्षेत्रों में स्वयं उगते और उगाये जाते हैं।

औषधीय गुण

इसके बीज को एक या दो की संख्या में लेकर पीस लिया जाता है तथा इसका उपयोग पेट दर्द, साँपों के काटने पर तथा पागलों को ज्यादा नींद आने के लिए किया जाता है। मलेरिया रोग में इसकी जड़ का डेढ़ से दो इंच और ५–६ गोल मिर्च मिलाकर पीस कर खाया जाता है तथा इतनी ही मात्रा दिन में दो चुटकी शीघ्र खाने पर साँप का विष उतर जाता हैं। इसकी जड़ को पीसकर दंशित स्थान पर लगाने एवं खिलाने से बिच्छू दंश भी ठीक होता है। इसका चूर्ण प्रतिजैविक (एन्टीबायोटिक) दवा की तरह कार्य करता है।

संजीवनी बूटी

वनस्पतिक नाम : लाइकोपोडियम कलभेटम

यह एक प्रकार का छोटा झाड़ीनुमा पौधा है। इसका पत्ता छोटा एवं गोल होता है। इसकी ऊँचाई लगभग १–२ मीटर तक होती है। यह जनजातीय क्षेत्र के खेत के मेड़ पर एवं गाँव के आस–पास पाया जाता है। यह प्रायः बरसात के मौसम में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसका प्रयोग चक्कर आने एवं रतौंधी में किया जाता है। चक्कर आने एवं रतौंधी में इसके पत्तों के रस को निचोड़कर दो–तीन बूंद कान में गिराया जाता है। कान दर्द एवं दाँत दर्द में भी इसका प्रयोग किया जाता है। बहुमूत्र में संजीवनी को पीसकर एक चुटकी सुबह–शाम मिश्री के साथ १५–२० दिनों तक देने से ठीक होता है। संधि–वात में संजीवनी तेल को गर्म करके मालिश करते हैं और अकवन पत्ते में तेल देकर जोड़ों को सेकते हैं तथा पत्ता बांध देते हैं।

सूर्यमुखी

वानस्पतिक नाम : हेलिएण्थस एनस

यह मझोला आकार का पौधा है। इसके पत्ते हरे, बड़े एवं चौड़े होते हैं। इसके तने बहुत ही कम शाखाओं में बंटे होते हैं। फूल बड़े एवं पीले रंग के

होते हैं। बीज काला एवं लंबा होता है। झारखण्ड के प्रायः सभी क्षेत्रों में लगाए जाते हैं। इसके तेल का प्रयोग करने से कोलेस्ट्रोल की मात्रा नहीं बढ़ती है।

सदाबहार

वानस्पतिक नाम : भीनका रोजिया

सदाबहार एक छोटा पौधा है। इसके पत्ते छोटे गोलाकार एवं हरे रंग के होते हैं। इसके फूल हल्के लाल एवं सफेद दो तरह के होते हैं। इसका पौधा सालों भर रहता है इसलिए इसका नाम सदाबहार पड़ा है। सदाबहार का पौधा घर में, आंगन, बाग–बगीचों में प्रायः सभी जगहों में लगाये एवं पाये जाते हैं। अध्ययन के दौरान पाया गया कि विशुनपुर प्रखण्ड में स्थित 'विकास भारती' में सदाबहार लगाया गया है।

औषधीय गुण

सदाबहार गैस्टिक एवं सन्निपात में लाभदायक है। गैस्टिक बीमारी में इसके ४–५ पत्ते खाली पेट में ३–४ दिन खाने से लाभ होता है। सदाबहार के पत्तों का रस दो–दो चाय चम्मच दिन में तीन बार करके सात से दस दिनों तक देने से सन्निपात ज्वर में लाभ होता है।

सिंदवार

वानस्पतिक नाम : भिटेक्स निगन्डो

सिंदवार मध्यम आकार का पौधा है। इसके पत्ते हरे, लंबे एवं नुकीले होते हैं। पत्ते का ऊपरी भाग हरा और निचला भाग हल्का सफेद होता है। इसका फूल छोटा, हल्का, सफेद–बैंगनी रंग के समूह में होता है। पौधा शाखाओं में बंटा होता है। इसका तना चिकना एवं भूरे रंग का होता है। इसका फल गुच्छों में छोटा, गोलाकार एवं कठोर होता है। यह प्रायः संपूर्ण झारखण्ड के मैदानों एवं नदी किनारे प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसके पत्ते को गुड़ के साथ पीसकर बुखार से पीड़ित लोगों को देने से बुखार ठीक हो जाता है। हाइड्रोसिल में इसके पत्ते को पीसकर लेप लगाया जाता है जिससे आराम होता है। चर्मरोग में इसके पत्ते को पानी में उबालकर नहाने की सलाह दी जाती है। इसके साथ करंज तेल लगाने से भी

चर्मरोग ठीक होता है। कुष्ठ के बुखार में पाँच पत्ते का चूर्ण बनाकर २ चुटकी सुबह–शाम सेंधा नमक के साथ ३० दिनों तक खाने से ठीक होता है। पागल कुत्ते के काटने पर इसके पत्ते को पीसकर लेप (काटे स्थान पर) करना चाहिए। आँखों में पानी बहने में इसकी टहनी और पत्ते को उबालकर इसका भाप आँख में लेने से ठीक होता है। रतौंधी में आँख में सिंदवार पत्ते का रस लगाने से लाभ होता है। पेट में कृमि होने पर सिंदवार का प्रयोग लाभप्रद है। इसके पत्ते, फल एवं छाल को पीसकर खाने से ३–४ दिन में कृमि रोग ठीक होता है।

सालगा

यह एक सदाहरित पेड़ है। इसके पत्ते इमली के पत्ते के समान छोटे–छोटे होते हैं। यह पेड़ जंगलों एवं पहाड़ों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

सालगा पेड़ की छाल को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी छाल को पानी में अच्छी तरह उबाला जाता है। इसके पानी से धोने से खुरहा घाव ठीक होता है। इस पानी से धोने से घाव में लगे कीड़े यथाशीघ्र मर जाते हैं और घाव ठीक हो जाता है। तीन–चार दिनों तक लगातार सुबह–शाम धोने से घाव में जल्दी आराम होता है।

सेमल

वानस्पतिक नाम : बोम्बेक्स सेइबा

सेमल का पेड़ विशाल होता है। इसके पत्ते का रंग हरा होता है। इसके डंठल में छः/सात पत्ते होते हैं। इसका फूल बड़ा एवं गहरा लाल रंग का होता है। इसका फल अकवन के फल के आकार का होता है। इसका फल परिपक्व होने पर रूई से भरा रहता है। यह पेड़ प्रायः झारखण्ड के पहाड़ों, जंगलों, शहरों एवं गाँवों में पाया जाता है। ठंड वाली घाटियों में यह बड़ा आकार प्राप्त करता है।

औषधीय गुण

सेमल के छोटे पौधा का कंद गर्भ ठहराने में लाभदायक होता है। सेमल के छोटे पौधे के कंद को खाली पेट में खिलाने से जिस स्त्री को गर्भ नहीं ठहरता है, उसे गर्भ ठहरने की संभावना रहती है। धात बीमारी में भी इसके

कंद को खाली पेट में खाने से ठीक होता है। इसका फूल, पलास का फूल एवं धवई के फूल को सुखाकर (तीनों को मिलाकर लगभग ५० ग्राम) आधा ग्लास पानी में भिंगाकर सुबह खाली पेट में उस पानी को पीने से यह टॉनिक का काम करता है।

फूलों और जड़ों का उपयोग साँप (सर्प दंश) काटने पर उपचार के रूप में किया जाता है। जब इसका मुख्य भाग (तना) गहरे रंग का हो जाता है तब उसके स्वदेस्राव जिसे 'मोचराज' कहते हैं अतिसार में अधिक उपयोगी होता है। छोटी माता (चेचक) में सेमल का कांटा पीसकर गुड़ के साथ मटर के बराबर गोली बनाकर दिन में एक बार तीन दिनों तक देने से ठीक होता है।

सुकदर्शन

वानस्पतिक नाम : क्रीनम डेफीक्सम

यह बड़ा शाकीय पौधा होता है जो कई वर्षों तक जीवित रहता है। इसका पत्ता लंबा, हरा, मांसल तथा निचला छोर नुकीला होता है। फल एक कवच में ढंका होता है जिसमें अनेक बीज होते हैं। एक ही जगह से कई पत्ते निकले होते हैं। इसकी जड़ गुच्छों में छितरायी हुई होती है। पत्ते नीचे की ओर मुड़ते हुए बढ़ते हैं। पुराने पत्ते हल्के पीले रंग के होते हैं। यह उत्तरी बिहार में अधिक मात्रा में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

इसके बीज को पीसकर चीनी या गुड़ के साथ मात्रानुसार पानी मिलाकर पीने से रेचक का कार्य करता है तथा शक्तिवर्द्धक भी होता है। इसके पत्ते के रस को चर्मरोग, कान दर्द में भी लगाने से लाभदायक होता है।

सनय

यह पौधा है। इसका तना सीधा, किन्तु कमजोर होता है। पत्ता भी हरा रहता है। फूल पीला होता है। बीज का रंग काला होता है। इसे लोग बरसात के दिनों में लगाते हैं।

औषधीय गुण

इसके फूल को सब्जी के रूप में खाया जाता है। सनय का बीज पीसकर शहद के साथ खिलाने से दस–पन्द्रह दिनों में लकवा रोग में आराम होता है।

समसेहार

समसेहार झाड़ीदार पौधा है। इसकी ऊँचाई ५–१० फीट तक होती है। इसके तना में चार गोलाकार शिराएँ होती हैं। इस शिरा को नीचे से काटकर खींचने से शिरा अकेला ६–७ फीट लंबा निकल जाता है। पत्ता हरे रंग का छोटा होता है। पत्ता रुखड़ा एवं कड़ा होता है। कच्चे एवं सूखे पत्ते को तोड़कर सटाने से लटक जाता है। फूल छोटा एवं हल्का गुलाबी रंग का होता है। समसेहार पूरे झारखंड के पहाड़ों एवं जंगलों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। क्षेत्रीय अध्ययन में इस पौधे को विशुनपुर प्रखण्ड के विकास भारती में देखा गया।

औषधीय गुण

यह बच्चों के पेट फूलने, गैस्टिक एवं बुखार में लाभदायक है। बच्चों का पेट बड़ा होने से समसेहार का ८–१० पत्ता एवं छाल को मिट्टी के बर्तन में उबालकर सुबह खाली पेट में एक सप्ताह तक पीने से ठीक होता है। इसे पीने से गैस्टिक भी ठीक होता है। बुखार में इसके पत्तों की चाय बनाकर एक दिन में ३ बार पीने से ठीक होता है।

साही/साहिल

साही एक जंगली जानवर है जो छोटे आकार का होता है। इसके पूरे शरीर में कांटे होते हैं। इसके कांटे का रंग हल्का काला एवं सफेद होता है। साही घने जंगलों एवं पहाड़ों में बिल बनाकर रहते हैं।

औषधीय गुण

इसकी अंतड़ी को सुखाकर दमा से पीड़ित व्यक्ति को सुबह खाली पेट में लगातार एक माह तक खिलाने से ठीक होता है।

सोंठ (सूखा अदरक)

वानस्पतिक नाम : जीनजीबर ओफीसीनेल

सूखे अदरक को सोंठ कहा जाता है। अदरक का पौधा छोटा ३–५ फीट तक का होता है। इसका संपूर्ण पौधा हरे रंग का होता है। पत्ता भी छोटा एवं गहरे रंग का होता है। अदरक की झारखण्ड राज्य के अतिरिक्त अन्य कई राज्यों में भी खेती की जाती है।

औषधीय गुण

यह हिचकी, दस्त एवं सर्दी–खांसी में लाभदायक होता है। सोंठ को महीन चूर्ण करके बराबर मात्रा में गुड़ मिलाकर गोली बनाकर पानी में घोलकर ५–६ बूंद नाक में डालें, यदि मुँह तरफ जाए तो थूक दीजिए, तत्काल हिचकी में फायदा होता है। एक कप दही में दो चम्मच सोंठ का चूर्ण मिलाकर दिन में तीन बार खाने से पतला दस्त ठीक होता है। ५–५ ग्राम सौंठ एवं गुड़ मात्रानुसार और घी को पानी में उबालकर एक कप शेष रह जाने पर चाय के जैसे गर्म ही पीते हैं। सर्दी–खांसी में तत्काल फायदा होता है। सोंठ और पीपल के वच के साथ सेंधा नमक का नस्य देने से नींद भगाने में लाभदायक होता है।

सिद्धू

सिद्धू का वृक्ष हरा होता है। इस वृक्ष की ऊँचाई ५–१० फीट तक होती है। इसका पत्ता हरे रंग का होता है। पत्ता मध्यम आकार का मोटा गुद्देदार होता है। इस वृक्ष के किसी भी अंग को तोड़ने से दूध जैसा–रस निकलता है। फूल होते हैं, लेकिन फल नहीं होते हैं। इसकी शाखा को लगाने से ही जिन्दा होता है। सिद्धू पूरे झारखंड के ग्रामीण क्षेत्र एवं शहरों के बगीचे में अल्प मात्रा में पाया जाता है।

औषधीय गुण

सिद्धू लांघन बीमारी में लाभदायक है। सिद्धू के पत्तों के साथ भाखर सिंदूर और सिन्दरीप मिलाकर पीसकर सात दिन तक एक समय खिलाने एवं सुबह–शाम मालिश करने से लांघन बीमारी ठीक होती है।

शहद (मधु)

शहद झारखंड के जंगलों, वृक्ष, गुफा आदि स्थानों पर मधुमक्खियों द्वारा बनाए गये छत्तों में से प्राप्त किया जाता है। प्रायः आदिम जनजातियाँ जंगलों से मधु संग्रह करके लाते हैं। जिसका उपयोग खाने एवं बेचने में होता है। घरों, बगीचों में बक्सा लगाकर व्यवसाय की दृष्टि से मधुमक्खी पाला भी जाता है जिससे मधु की प्राप्ति होती है। यह मीठा एवं स्वादिष्ट होता है। मधु को भारतीय शास्त्र में अमृत कहा गया है। मधु को मधुमक्खियाँ स्वयं फूलों से मकरंद एवं रस लेकर बनाती हैं।

औषधीय गुण

गाल फूलने की बीमारी में इसे चूने के साथ लगाने से ठीक होता है। रक्त की उल्टी कम करने के लिए पत्थर कोयले की जली हुई राख को मधु के साथ चटाया जाता हैं जिससे अस्थायी रूप से रक्त की उल्टी कम होती है। मधु रस जलने, जुकाम, रात्रि में बिस्तर पर मूत्र एवं अनिद्रा में लाभदायक होता है। शरीर के किसी भी जले हुए स्थान पर मधुरस लगाने से जलन रुकती है एवं जुकाम में एक गिलास गर्म पानी में एक चम्मच मधुरस आधा टुकड़ा नींबू का रस मिलाकर पीने से ठीक होता है। रात में सोने से पहले मधुरस पीने से रात को बिस्तर पर पेशाब करने वालों की आदत सुधरती है तथा रात्रि–बेड–मूत्र बंद हो जाता है। सोते समय एक ग्लास दूध में एक चम्मच मधुरस मिलाकर पीने से अनिद्रा दूर होती है। बन्दर के काटने पर जीरा पीसकर मधु के साथ मिलाकर काटे स्थान पर लेप करने से फायदा होता है। मधु (शहद) तुरंत शक्ति स्फूर्ति प्रदान करता है एवं सुपाच्य होता है। यह कमजोर दिल, दिमाग एवं पेट के लिए लाभकारी है। शहद रोग से लड़ने के लिए शरीर में बल प्रदान करता है। अल्सर के रोगियों के लिए भी मधु लाभकारी है। मधुमेह की बीमारी में जामुन–मधु लाभप्रद है।

सेवन निषेध– घी और मधु को समान मात्रा में मिलाकर नहीं खाना चाहिए। मधु को गर्म करके सेवन नहीं करना चाहिए। खाली पेट में इसे नहीं लेना चाहिए। सन्निपात (त्रिदोष) के रोगियों को इसका सेवन करना निषेध है।

शीशम

वैज्ञानिक नाम : डलबरजीयासिसउ

इसका पौधा बहुवर्षीय होता है। वृक्ष शाखाओं में बंटा होता है। तने की छाल भूरे रंग की होती है। पुरानी लकड़ी कत्थई रंग की होती है। इसका पत्ता हरा, नुकीला एवं छोटा होता है। यह झारखंड के प्रायः सभी क्षेत्रों में वन विभाग द्वारा लगाया जाता है।

औषधीय गुण

एक ग्लास पानी में १०–२० पत्तों को डालकर रात भर फुलने के लिए छोड़ देते हैं। सुबह खाली पेट में छानकर पीने से ताकत या शक्ति बढ़ती है।

शरीफा

वैज्ञानिक नाम : एनोना स्कवामोसा

शरीफा एक छोटा झाड़ीनुमा एवं सदाबहार पौधा है। इसका पत्ता छोटा एवं हरा रंग का होता है। इसका फूल हल्का सफेद एवं पीले रंग का होता है। इसका फल गोल खुरदरा होता है। बीज काले रंग का अधिक संख्या में होते हैं। यह प्रायः देहातों एवं शहरों में पाया जाता है। पूर्वी सिंहभूम एवं पश्चिमी सिंहभूम में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पश्चिमी पलामू के जंगलों में, हजारीबाग, संथालपरगना और मानभूम के पहाड़ों पर छोटे वृक्ष के रूप में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

शरीफा का पत्ता मवेशी के प्रसव के समय प्रयोग में लाया जाता है। नमक तथा शरीफा के कुछ पत्ते (३ या ४) को खिलाने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। अध्ययन के क्रम में पाया गया कि इसका प्रयोग गारु क्षेत्र के उराँव, बिरजिया एवं खेरवार जनजाति के लोग मवेशी के शीघ्र एवं सामान्य प्रसव के लिए करते हैं। जड़ रेचक का कार्य करती है। बीज, फल और पत्तों का प्रयोग जू को हटाने के लिए किया जाता है। यह कृमि नाशक भी है।

हरश्रृंगार/हरसिंगार

वानस्पतिक नाम : निकटेन्थस अरबर ट्रिसटीस

यह छोटा पतझड़ वृक्ष है। इसकी शाखा चतुर्भजाकार होती है। इसका रंग भूरा, हरा और सफेद होता है। इसकी छाल रुखड़ी होती है। पत्ती अंडाकार और नुकीली होती है। इसका तना सफेद, कठोर, रोंवेदार तथा घुमावदार होता है। इसका फूल सुगंधित होता है। यह झारखण्ड में पाया जाता है, विशेषकर पथरीली भूमि एवं कंदराओं के आस–पास में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इसका प्रयोग बुखार एवं गठिया रोग में किया जाता है। इसके पत्तों का ताजा रस शहद के साथ मिलाकर खाने में बुखार में फायदा होता है। इसके पत्तों का काढ़ा जिसे दुस्साध्य पैर के दर्द में लाभदायक बताते हैं। गर्भावस्था में बुखार होने पर ताजे पत्ते के काढ़ा को मधु रस के साथ पकाकर सुबह–शाम पिलाने से ठीक होता है।

सर्दी में इसके ताजे पत्ते का काढ़ा दिन में तीन बार देने से ठीक होता है। सर्प विष में इसके पत्ते को पानी के साथ पीसकर पिलाने से लाभ होता है। बाल झड़ने में इसके फूल को कूट कर, बारह घंटे भिंगो कर, मल कर, रस निकाल कर, छान कर इस पानी को तिल या नारियल तेल में पका कर सिर में लगाने से बाल का झड़ना खत्म होता है।

हड़जोड़/हड़जोड़वा

वानस्पतिक नाम : सीजनपिलोस पारीएश

यह प्रायः लता जैसा हल्का हरे रंग का होता है। बीच–बीच में गांठें पायी जाती हैं और सबसे ऊपर में फूल लगते हैं। इनकी गांठों से कहीं–कहीं पर शाखाएँ भी निकलती हैं जिसके द्वारा दूसरे लत्तर का निर्माण होता है। इसके पत्तों का आकार पान के पत्तों के समान होता है। प्रायः झारखंड के सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। हड़जोड़वा हड्डी जोड़ने के नाम से प्रसिद्ध है।

औषधीय गुण

इसके लत्तर को पीसकर लेई जैसा बना लेते हैं और धुली हुई शीशी या डब्बे में रख लेते हैं। जिसे तेल के साथ मिलाकर मलहम बना लिया जाता है। इस प्रकार यह दवा के रूप में तैयार हो जाता है। इसको हड्डी के टूटने पर या गठिया वात में केवल पीस कर लेप लगा देने से दर्द ठीक हो जाता है। अधिक मूत्र विसर्जित होने पर हड़जोड़ की लताओं का पंचांग बनाकर सुबह–शाम दो–दो चम्मच पीने से वृक्क शोथ संलक्षण ठीक होता है। हड्डी हल्की सी टूटने की स्थिति में इसकी ताजी फुनगी को लगभग सात दिनों तक चबाने से लाभ होता है अर्थात् हड्डी जुड़ने में लाभ होता है।

हिरण सींग एवं हाथी दाँत

हिरण सींग की प्राप्ति जंगलों में पाये जाने वाले हिरणों से होती है तथा हाथी दाँत भी जंगलों में हाथी से प्राप्त किये जाते हैं।

औषधीय गुण

हाथी दाँत और हिरण सींग को पत्थर पर पीसकर चूर्ण बनाकर पानी से हल्का गीला करके बवासीर में एक सप्ताह तक लगाने से ठीक होता है। इस दवा को रात में सोते समय लगाना ज्यादा लाभप्रद होता है।

हल्दी

<u>वनस्पतिक नाम : कुरकुमा डोमेस्टीका</u>

हल्दी एक प्रकार का छोटा पौधा होता है। इसके पत्ते बड़े लंबे एवं हरे रंग के होते हैं। इसका फूल हल्का हरा एवं सफेद रंग का होता है। इसकी शाखाएँ एवं फल नहीं होते हैं, बल्कि जमीन के अंदर पीले रंग का कंद होता है। इसकी खेती गाँवों में खास कर बरसात के दिनों में अधिक मात्रा में की जाती है। जंगली हल्दी भारत के किसी भी जंगलों एवं पहाड़ों में आसानी से पाये जाते हैं। व्यावसायिक कारणों से भी पूरे भारत में हल्दी की खेती की जाती है। औषधि के रूप में खाने वाला हल्दी ही प्रयुक्त होता है।

<u>औषधीय गुण</u>

करीब ३ ग्राम हल्दी माहवारी होने के पाँचवें दिन सुबह ताजे पानी के साथ सिर्फ ३ दिन हर महीने खिलाते रहने से गर्भ ठहरने की संभावना कम रहती है। यदि किसी के दाँतों में चबाने से दर्द होता है तो ऐसी स्थिति में पीड़ित व्यक्ति को रात्रि में सोते समय थोड़ी–सी पीसी हल्दी व सरसों तेल का दाँतों पर लेप करने के बाद सुबह कुल्ला कर साफ करने से दाँत के दर्द से निजात पाया जा सकता है। हल्दी घाव, चोट, कैंसर, प्रमेह एवं स्वप्न दोष में लाभदायक होती है। हल्दी एवं तुलसी के पत्ते को पीसकर घाव में डालने से आराम होता है। चोट लगे स्थान पर पिसी हल्दी को सरसों तेल में हल्का पकाकर पतला कपड़ा बांधने पर दर्द को खींच कर कम कर देता है।

घाव एवं चोट में हल्दी का लेपन भी आराम पहुँचाता है। कच्ची हल्दी को पीसकर गाय के घी के साथ गर्म कर चोट एवं घाव पर लगाने से फायदा होता है। फेफड़े के कैंसर में ताजी हल्दी को पीसकर गोली बना लिया जाता है तथा एक–एक गोली सुबह–शाम खाने से ठीक होता है। हल्दी का गोल कंद पीस कर लगाने से पित्ती (उछालना) ठीक होता है। साथ ही हल्दी गांठ को पीसकर आँखों में डालने से आँखों की जलन ठीक हो जाती है। हल्दी की गोल सूखी गांठ लेकर बड़े–बड़े टुकड़े कर लिया जाता है और उसे कागजी नींबू के रस में ३० दिनों तक डुबा कर रखा जाता है। फिर निकाल कर पीस लिया जाता है। इस पीसी हुई हल्दी को आँखों में दिन में दो बार लगाने से मोतियाबिंद ठीक होता है। प्रमेह एवं स्वप्न दोष में ताजी हल्दी को आंवला

फल के रस एवं मधु रस में मिलाकर सुबह–शाम एक सप्ताह तक खाने से ठीक हो जाता है।

हर्रा/हरे

वैज्ञानिक नाम : टर्मिनालिया छेबुला

हर्रा का वृक्ष बड़ा पौधा होता है। इसके पत्ते लंबे, हरे, अंडाकार होते हैं। पत्ते शाखा पर आमने–सामने लगे होते हैं। इसके पत्ते कड़े एवं मजबूत होते हैं। फूल मटमैले सफेद रंग के होते हैं। फल छोटे लंबे एवं उभरे हुए होते हैं। यह समस्त झारखण्ड राज्य में पाया जाता है। यह मिश्रित पतझड़ वनों में होते हैं।

औषधीय गुण

हर्रा के सूखे फल औषधि में काम आते हैं। यह पुराने फोड़े नासूर तथा जख्म पर उपयोगी होते हैं। मुँह में छाले तथा सूजन होने पर इसके पानी से गरारा या कुल्ली की जाती है। हरे रेचक का कार्य भी करता है। यह हृदय के लिए बलकारक होता है। पीसे हुए हर्रे के फल दाँतों के मसूड़ों को मजबूत बनाने के काम आते हैं। यह पाचन क्रिया एवं नेत्र–रज्जू दूर करने में लाभदायक है। इसके पत्ते का रस आँख में तीन–चार दिन सोते समय लगाने से नेत्र रज्जू ठीक होता है। इसका फल दो दिन खाने से पाचन क्रिया में लाभ होता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

झारखण्ड क्षेत्र ३2 जनजातियों का प्राकृतिक निवास है। यह क्षेत्र पहाड़–पठार एवं वनों से पटा है। यहाँ के वन जड़ी–बूटियों तथा चिकित्सीय गुण वालों पौधों से भरे हैं। क्षेत्र पिछड़ा एवं उपेक्षित है, जनवर्ग गरीब, अशिक्षित एवं विपन्न है। आधुनिक चिकित्सा महंगी है, काफी सोफिस्टीकेटेड है और सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं है। साथ ही एलोपैथी चिकित्सा का पार्श्वप्रभाव या प्रतिकूल प्रतिक्रिया भी इस चिकित्सा पद्धति का एक बड़ा नकारात्मक पक्ष है। ऐसी स्थिति में जनजातियों के लिए जड़ी–बूटी से बनी दवा उपचार के लिए काफी माकूल एवं मुफीद है। इनके बीच जनजातीय औषधियों का ज्ञान पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप से जीवित बना रहा है जिसका वर्णन औषधि साहित्य में भी नहीं मिलता।

जनजातीय औषधि सस्ती, सुलभ एवं हानिरहित होती है। किन्तु सही जानकारी के अभाव में इसका प्रयोग हानिकारक भी हो सकता है। इस प्रतिवेदन में औषधियों की परिचयात्मक चर्चा भर है। चिकित्सीय नुस्खे नहीं दिये गये हैं। अतः बिना वैद्य के निर्देश के प्रयोग न करने की सलाह या सुझाव ध्यान में रखने योग्य है। जड़ी–बूटी वाली औषधियों के प्रयोग में अनुपान, मात्रा, समय, सेवन–विधि आदि का बड़ा महत्त्व है जिसकी जानकारी अनुभवी वैद्यों को ही रहती है। यह बहुत प्रशंसनीय एवं व्यावहारिक लगता है कि महंगी दुर्लभ आधुनिक चिकित्सा के स्थान पर जनजातीय समाज में परम्परागत चिकित्सा को लोकप्रिय बनाया जाय। इसके लिए कुछ सुझाव पर ध्यान देना आवश्यक है।

१. जड़ी–बूटियों तथा इनसे बनी औषधियों के उचित संरक्षण एवं भंडारण की व्यवस्था करनी जरूरी है।

२. इन जड़ी–बूटियों का, जनजातीय औषधियों का, वैज्ञानिक परीक्षण किया जाना चाहिए।

३. विभिन्न क्षेत्रों में एक ही पौधों को कई नामों से जाना जाता है या कई विभिन्न पौधे के लिए एक ही नाम का या मिलते–जुलते नाम का प्रयोग किया जाता है। अतः इसका मानकीकरण किया जाना चाहिए ताकि सही

जानकारी हो सके। इसके लिए कुछ अनुभवी जनजातीय ग्रामीण व वैद्यों का सहयोग लिया जा सकता है।

४. पौधों के वैज्ञानिक परीक्षण में काफी सावधानी बरती जाय। कभी–कभी पौधों के अज्ञात तत्व रासायनिक विश्लेषण में चिह्नित नहीं होते। पौधे में मौजूद भिन्न–भिन्न एल्कालाईड समन्वित नहीं होने पर प्रतिक्रिया करते हैं। इसका ध्यान रखना जरूरी है। उदाहरणार्थ क्वाथ या काढ़ा तैयार करने में समूचे पौधे या कई जड़ी–बूटियों का प्रयोग होता है और सबका मिलाजुला मिश्रित रूप ही प्रभावी होता है।

५. रोग के सही निदान, औषध निर्माण, सेवन–विधि, मात्रा, समय, अनुपान, उपचार, परिचर्या आदि सुनिश्चित करने के लिए अनुभवी वैद्यों का परामर्श लिया जाना चाहिए।

६. कुछ का परीक्षण प्रयोग हो चुका है, वैसी औषधियों को मानक औषधि कोषों में स्थान दिया जाना चाहिए।

७. वन औषधि महाविद्यालय तथा शोध केन्द्र की स्थापना भी लाभकर सिद्ध हो सकती है। मनोहरपुर में वनौषधि महाविद्यालय की स्थापना का प्रयास इस दिशा में एक सराहनीय कदम माना जा सकता है।

८. लुप्त होती जड़ी बूटियों को खोज कर, लाकर नर्सरी तैयार करना चाहिए। हटिंगहोड़े गाँव में गेब्रियल हेम्बरोम का जड़ी–बूटी संग्रहालय न केवल बिहार, बल्कि उडिसा एवं बंगाल के भी जनजातीय जीवन में अपनी एक पहचान बनाए हुए हैं।

९. जनजातीय क्षेत्र में अधिकांशतः दवा बनाने की विधि त्रुटिपूर्ण है और प्रयोग भी सही ढंग से नहीं होता। मात्रा अनुमान या अंदाज पर निश्चित कर ली जाती है। इसमें सुधार लाने एवं इसे उन्नत बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए समुचित शिक्षण–प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

बहुत कम प्रयास और थोड़े खर्च से वनस्पतीय औषधियों को सर्वसाधारण के लिए उपयोगी एवं सुलभ बनाया जा सकता है।

परिशिष्ट - (क)

औषधीय पौधों/शाक/कंदमूल/अन्य

पेड़/वृक्ष

१. अर्जुन
२. अशोक
३. अमलतास
४. आंवला
५. आसन
६. आम
७. इमली
८. कचनार
९. करंज
१०. कुसुम
११. कदम
१२. केला
१३. कनैल
१४. करम
१५. खैर
१६. गम्हार
१७. गम्भारी
१८. गुलर
१९. गुंज
२०. चीड़
२१. चंदन
२२. चिलबिलिया
२३. छातिन
२४. जामुन
२५. पलाश
२६. पीपल
२७. नींबू
२८. नीम
२९. धवई
३०. फुटकल
३१. बेल
३२. बबूल
३३. बहेड़ा
३४. बड़
३५. बेर
३६. बेलंजन
३७. भेलवा
३८. मैदा
३९. महुआ
४०. मुनगा
४१. महलान
४२. मकचुन्द
४३. यूकिलिप्ट्स
४४. सिंदवार
४5. सलगा
४६. सेमल
४७. शीशम
४८. हरा
४९. काली

पौधा/झाड़

५०. अडूसा
५१. अकवन
५२. अरंडी
५३. अनंतमूल
५४. अजवायन
५५. कुनैन
५६. कामराज
५७. कुटमा
५८. कालाबूटी
५९. कौड़ी
६०. कुलिंजन
६१. करीर
६२. खैनी
६३. गंधपूर्ण
६४. ग्वारपाठा
६५. गन्ना
६६. गांजा
६७. गेंदा
६८. गुलाब
६९. घृतकुमारी
७०. घोड़बच
७१. चिरचिरी
७२. चावलकंदा
७३. चिरायता

७४. चरईगोड़वा
७५. जीरा
७६. तुलसी
७७. पत्थरचट्टा
७८. पीपर
७६. पूतरी
८०. नागफनी
८१. धतकी
८२. धत
८३. धनिया
८४. हरसिंगार
८५. इसबगोल
८६. तालमखाना
८७. तातालबूटी
८८. पृश्नीपर्णी
८६. पितौंजी
६०. भूमिजाम
६१. भुखला कांटा
६२. बथुआ
६३. मुलेठी
६४. मयूरचुंदिया
६५. मर्दराज
भोजराज
तेजराज
६६. मूली
६७. मेहंदी
६८. रेंगनी
६६. लहसुन
१००. लालदुधी
१०१. लाजवंती
१०२. सर्पगंधा
१०३. संजीवन बूटी
१०४. सूर्यमुखी
१०५. सनाय
१०६. सिद्धु

लरंग/साग

१०७. अमरवेल
१०८. ईशरमूल
१०६. उड़द
११०. कसगो
१११. कौच (अलकुशी)
११२. खीरा
११३. कोंहड़ा
११४. नूनिया साग
११५. खेसारी
११६. गिलोय
११७. घूमासाग
११८. चाकोड़
११६. चौलाई
१२०. टमाटर
१२१. पुदीना
१२२. दूब
१२३. परही
१२४. बेंग साग
१२५. लरंग लता
१२६. हड़जोड़
१२७. करैला
१२८. कुटुम

कंद-मूल

१२६. बबला कंदा
१३०. भभ आंवला
१३१. महाकाल
१३२. रमपावन
१३३. जंगली प्याज
१३४. सोंठ
१३५. हल्दी
१३६. पिंडर कोम
१३७. प्याज

जीव-जंतु

१३८. कालाकीड़ा
१३६. केंचुआ
१४०. गोह
१४१. चमगादड़
१४२. नाग सांप
१४३. मोर पंख
१४४. रेशम कीड़ा
१४५. साही
१४६. हिरण सींग
१४७. हाथी दांत

अन्य

१४८. शहद
१४६. बादाम गिरि
१५०. कहंट

परिशिष्ट - (ख)

वैद्यों की सूची

विशुनपुर प्रखंड

१. वैद्य राजेन्द्र उरांव, (उम्र ४० वर्ष), विशुनपुर, गुमला

२. वैद्य मंगला उरांव (५१), ग्राम– नरमा, विशुनपुर, गुमला,

३. वैद्य सीताराम बड़ाइक (४३), विशुनपुर, गुमला

बानो प्रखंड

४. वैद्य फादर गेबरियल हेम्बरोम (५५), हाटिंगहोड़े, गुमला

५. वैद्य राघवनंदन मिश्र (४५), लचरागढ़ गुमला

६. डा. चंद्रभूषण सिंह, (५०), लचरागढ़, गुमला

महुआडांड़ प्रखंड

७. वैद्य गोपाल महतो, (४५) महुआडांड़, पलामू

८. वैद्य लोहरा उरांव, (४५) महुआडांड़, पलामू

९. वैद्य पांडेय उरांव, (५०), महुआडांड़, पलामू

गारु प्रखंड

१०. वैद्य मितेंद्र विरजिया, (५०), गारु, पलामू

११. वैद्य लालदेव भगत (५५), रूद्र, पलामू

१२. वैद्य बलदेव भगत (४५), रूद्र, पलामू

१३. वैद्य कालदेव भगत (५५), रूद्र, गारु, पलामू

१४. वैद्य गणेश लाल भगत (६०), गारु, पलामू

१५. वैद्य छोटेलाल भगत (५२), गारु, पलामू

१६. वैद्य महावीर भगत (५६), गारु, पलामू

टोन्टो प्रखंड

१७. वैद्य दामु हांसदा (४२), तालाबुरु, टोंटो, प. सिंहभूम

१८. वैद्य कोरनो नायक (४०), छोटा झींकपानी, टोंटो, प. सिंहभूम

१६. वैद्य बुधुराम सिंकू (२५), टेकराहातु, टोंटो, प. सिंहभूम

अड़की प्रखंड

२०. वैद्य रोड़े सिंह मुंडा (४०), लुपुंगहातु, अड़की, राँची

२१. वैद्य गंधर्व सिंह मुंडा (४०), अड़की, राँची

२२. वैद्य कोस्ता भगत, हेम्ब्रम बाजार, अड़की, राँची

२३. वैद्य नरसिंह मुंडा, अड़की

सुंदर पहाड़ी प्रखंड

२४. वैद्य रमेशचंद्र (४०), अंगवाली, सुंदर पहाड़ी, गोड्डा

२५. डा. विश्वनाथ पांडेय (४२), चंदना, सुंदरपहाड़ी, गोड्डा

२६. वैद्य विनय पहाड़िया (४०), सुंदर पहाड़ी, गोड्डा

२७. वैद्य रामेश्वर हांसदा (४०), बांसजोड़ी, सुंदर पहाड़ी, गोड्डा

२८. वैद्य देवा पहाड़िया (५०), पहाड़पुर, सुंदर पहाड़ी, गोड्डा

२६. वैद्य महेश्वर माल्टो (५५), पहाड़पुर, सुंदर पहाड़ी, गोड्डा

३०. वैद्य महेश्वर मुंडा (४६), तसरिया, गोड्डा

३१. वैद्य परमेश्वर पहाड़िया (५०), नारायणपुर, गोड्डा

३२. वैद्य मणिलाल मुर्मू (५०), सुंदरमोड़ सुंदर पहाड़ी, गोड्डा

संदर्भ - सूची

१. कुमार डॉ. विपिन – सामाजिक वानिकी विस्तार एवं पर्यावरण संरक्षण, कुरूक्षेत्र, जून १९९५

२. दास, रामजीवन – लघुवन पदार्थ का कार्य एवं उससे लाभ, रिपोर्ट १९८०, पृ. ३२–३६

३. बघेल, डॉ. गुलाब सिंह – भारतीय वन का समग्र मूल्यांकन, योजना –१९९५

४. वर्मा, उमेश कुमार – झारखण्ड का जनजातीय जीवन, १९९१, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी

५. शर्मा, डॉ. विमला चरण – छोटानागपुर का भूगोल, १९९७ राजेश एवं केशरी विक्रम पब्लिकेशन, नई दिल्ली

६. शर्मा, डॉ. विमला चरण – ट्राइबल ज्योग्रफी, १९७८

७. शर्मा, विमला चरण – कल्चरल छोटानागपुर – यूनिटी इन डाइवरसिटी (संपादित)

८. सिंह, सीताराम – वृक्ष हमारे परम सहयोगी, कुरुक्षेत्र, जून १९९५

९. सिन्हा आदित्य प्रसाद – लघुवन पदार्थ व्यापार (८८ – ८९) में झारखण्ड राज्य आदिवासी विकास निगम की भूमिका तथा इस कार्य में बिचौलियों की भूमिका, रिपोर्ट, १९९१

१०. गुप्ता, सत्यप्रकाश – १९७४, ट्राइब्स ऑफ छोटानागपुर प्लेटो, बिहार ज.जा.क.शो. संस्थान, राँची

११. हेम्ब्रोम, जी.पी. – १९९४, आदिवासी औषध (होड़ोपैथी)

१२. जैन, सुधांशु कुमार – १९९८, औषधीय पौधे, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली

१३. पांडे, बी.पी. – १९८४, इकोनॉमिक बोटनी, एस. चांद एण्ड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली

१४. सिंह, एम.पी. एण्ड श्रीवास्तव जे.एन. – १९८९, मेडिसीनल प्लांट ऑफ छोटानागपुर, बिरसा कृषि वि.वि., कांके

१५. तिवारी, डा. दीना नाथ – २०००, जड़–बूटियों का संसार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली